भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक – साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३

सोमवार २१ अक्तूबर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

मध्यावधि चुनाव
एक लगाये हजार पाये
—सम्पादकीय १८

गांधी-विचार के अनुवर्तन
की आवश्यकता —विनोबा २०

कश्मीर समस्या : विधायक दृष्टिकोण
और रचनात्मक कदम की आवश्यकता
—जयप्रकाश नारायण २४

बिहारदान : प्रगति का लेखा-जोखा
—निर्मलचन्द्र २९

आन्दोलन के समाचार ३२

परिशिष्ट
"गाँव की बात"

आवश्यक सूचना

'भूदान-यज्ञ' का पिछला अंक १-२ संयुक्त था । इस महीने में चार अंक पूरा करने की दृष्टि से ऐसा किया गया, ताकि अगले अंक क्रमानुसार प्रकाशित किए जा सकें। चूँकि अंक १-२ सोलह पृष्ठों का ही था, इसलिए प्रस्तुत अंक में ८ पृष्ठ बढ़ा दिये गये हैं। इसी प्रकार अंक ५ (दिनांक ४-११-'६८) में भी—जिसके साथ 'गाँव की बात' परिशिष्ट रहेगा, ८ पृष्ठ अधिक रहेंगे।—व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

•

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

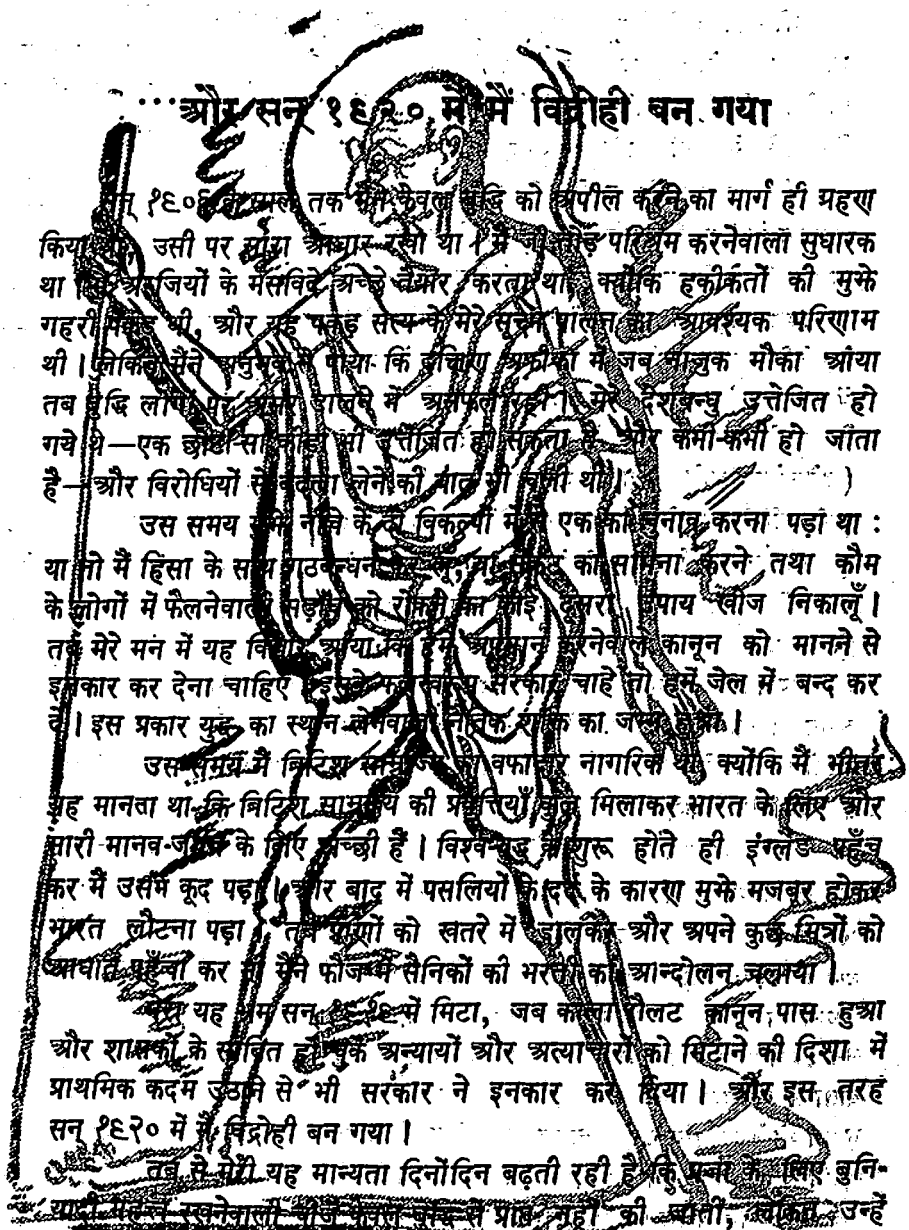

...और सन् १९२० में मैं विद्रोही बन गया

सन् १९०६ के समय तक मैंने केवल बुद्धि को अपील करने का मार्ग ही ग्रहण किया था, उसी पर मेरा आधार रहा था। मैं जी-तोड़ परिश्रम करनेवाला सुधारक था। मैं अरजियों के मसविदे अच्छे तैयार करता था, क्योंकि हकीकतों की मुझे गहरी पकड़ थी, और यह पकड़ सत्य के मेरे सूक्ष्म पालन का आवश्यक परिणाम थी। लेकिन मैंने अनुभव से पाया कि दक्षिण अफ्रीका में जब नाजुक मौका आया तब बुद्धि लोगों पर असर डालने में असफल रही। मेरे देशबन्धु उत्तेजित हो गये थे—एक छोटा-सा कीड़ा भी उत्तेजित हो सकता है और कभी-कभी हो जाता है—और विरोधियों से बदला लेने की बात भी चली थी।

उस समय मुझे नीति के दो विकल्पों में से एक का चुनाव करना पड़ा था: या तो मैं हिंसा के साथ गठबन्धन कर लूँ, या किसी का सामना करने तथा कौम के लोगों में फैलनेवाली सड़ांध को रोकने का कोई दूसरा उपाय खोज निकालूँ। तब मेरे मन में यह विचार आया कि हमें अपमान करनेवाले कानून को मानने से इनकार कर देना चाहिए। इसके फलस्वरूप सरकार चाहे तो हमें जेल में बन्द कर दे। इस प्रकार युद्ध का स्थान लेनेवाली नैतिक शक्ति का जन्म हुआ।

उस समय मैं ब्रिटिश साम्राज्य का वफादार नागरिक था, क्योंकि मैं भीतर यह मानता था कि ब्रिटिश साम्राज्य की प्रवृत्तियाँ कुल मिलाकर भारत के लिए और सारी मानव-जाति के लिए अच्छी हैं। विश्वयुद्ध के शुरू होते ही इंग्लैंड पहुँच कर मैं उसमें कूद पड़ा। और बाद में पसलियों के दर्द के कारण मुझे मजबूर होकर भारत लौटना पड़ा। तब प्राणों को खतरे में डालकर और अपने कुछ मित्रों को आघात पहुँचा कर भी मैंने फौज में सैनिकों की भरती का आन्दोलन चलाया।

मेरा यह भ्रम सन् १९१९ में मिटा, जब काला रौलट कानून पास हुआ और शासकों के साबित हो चुके अन्यायों और अत्याचारों को मिटाने की दिशा में प्राथमिक कदम उठाने से भी सरकार ने इनकार कर दिया। और इस तरह सन् १९२० में मैं विद्रोही बन गया।

तब से मेरी यह मान्यता दिनोंदिन बढ़ती रही है कि प्रजा के लिए बुनियादी महत्त्व रखनेवाली चीजें केवल बुद्धि से प्राप्त नहीं की जातीं, लेकिन उन्हें प्रजा के कष्ट सहन द्वारा खरीदना पड़ता है।

कष्ट सहन मानव प्राणियों का कानून है, युद्ध जंगल का कानून है। लेकिन जंगल के कानून की अपेक्षा कष्ट सहन विरोधी का हृदय-परिवर्तन करने की तथा उसके अन्यथा बन्द रहनेवाले कानों को बुद्धि की आवाज सुनने के लिए खोलने की अनन्त गुनी अधिक शक्ति रखता है।

—मो० क० गांधी

सम्पादकीय

www.vinoba.in

मध्यावधि चुनाव

ग्रामदान हुआ, प्रखण्डदान हुआ, जिलादान हुआ, और अब 'बिहारदान' भी हो जायेगा, तब भी क्या राजनीति इसी तरह चलती रहेगी ? क्या शासन-नीति जैसी है वैसी ही रहेगी ? अगर ये न बदलीं, तो क्या कुछ भी नया हो सकेगा ? इस तरह के प्रश्न कार्यकर्ता भी पूछते हैं, और वे नागरिक भी पूछते हैं जो अपने और अपने देश के लिए अच्छे दिनों की राह देख रहे हैं।

जो लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं, वे 'ग्रामदान' का राजनीतिक व्यक्तित्व (पोलिटिकल परसनैलिटी) देखना चाहते हैं। जिन्हें ग्रामीण अर्थनीति आकर्षित करती है वे जानना चाहते हैं कि ग्रामदान किस शक्ति से अपनी आर्थिक योजना कार्यान्वित कर सकेगा ?

और हम शुरू से कहते भी आते हैं कि ग्रामदान सचमुच स्वराज्य के लिए है, इसलिए स्वाभाविक है कि मांग सबसे पहले यह जानने की हो कि ग्रामस्वराज्य का संगठित स्वरूप क्या होगा ?

'दल-मुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' हमारी लोकनीति का आधार है। लेकिन ग्रामप्रतिनिधित्व का प्रश्न तो तब उठेगा, जब गाँव-गाँव में ग्रामसभाएँ संगठित हो जायेंगी, और ऐसी स्थिति आ जायेगी कि उनके सर्व-सम्मत प्रतिनिधियों को लेकर निर्वाचन-मण्डल (इलेक्टोरल कालेज) बनाये जा सकें। जाहिर है कि वह स्थिति अभी नहीं है। अगले बड़े आम चुनावों तक आनी चाहिए, यह तय है। और उसकी तैयारी अभी से ही होनी चाहिए। लेकिन तब तक क्या करें ? क्या फरवरी में होने वाले मध्यावधि चुनाव में कुछ नहीं हो सकता ?

मध्यावधि चुनाव में 'दल-निरपेक्षता' की कोशिश तो होनी ही चाहिए। वह संभव भी है, और आवश्यक भी। अगर हम अभी से लोगों के दिल से दल को नहीं निकाल सकेंगे तो आगे दलमुक्त ग्रामप्रतिनिधित्व कैसे सम्भव होगा ?

अभी ५–६ अक्तूबर को सोखोदेवरा में हुई बैठक में सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने मध्यावधि चुनाव के सम्बन्ध में अपना 'स्टैण्ड' स्पष्ट किया है। उस स्टैण्ड के तीन अंश हैं। एक, मतदाता दल का ध्यान छोड़कर सबसे अच्छे— उसकी शुद्ध-बुद्धि में जो सबसे अच्छा जान पड़े—उम्मीदवार को वोट दें। दो, प्रचार की दृष्टि से सब उम्मीदवार गाँव में एक दिन एक मंच पर इकट्ठा हों ताकि मतदाता सबकी बात इकट्ठा सुन सकें और समझ कर निर्णय कर सकें। चुनाव को लेकर गाँव की एकता हरगिज नहीं टूटनी चाहिए। तीसरी, चुनाव में एक मान्य आचार-संहिता हो। उसका पालन होता है या नहीं, यह देखने के लिए गाँव, प्रखण्ड, जिला, और राज्य स्तर पर निष्पक्ष व्यक्तियों की 'निरीक्षण-टोलियाँ' बनायी जायँ।

इस योजना में 'दल-मुक्ति' के बीज हैं। इस बार जाति, धर्म, भाषा, दल आदि के संकीर्ण विचारों को छोड़कर 'सबसे अच्छे' उम्मीदवार को वोट देना है। अगर यह विचार व्यापक रूप से लोकमानस में घुस जायेगा तो 'दल' का रंग फीका पड़ जायेगा। इतना ही नहीं, चुनाव की पूरी दिशा बदल जायेगी। डंडा, पैसा, उत्तेजक नारा आदि सभी फीके पड़ जायेंगे। और, अगर इस तरह चुने गये 'अच्छे' लोगों का विधान-मंडल में बहुतम हो जाय तो एक दल या कई दलों की नहीं, सभी दलों के 'अच्छे' लोगों की मिली-जुली सरकार बनने की हवा बन जायेगी। दल की दीवारें टूट, नहीं तो काफी कमजोर जरूर पड़ जायँगी।

मध्यावधि चुनाव में हमारी ओर से 'अच्छे उम्मीदवार' की हवा तैयार की जानी चाहिए। नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी के तीन महीने सामने हैं। तीन महीने कम नहीं हैं। डटकर काम होगा तो काफी काम हो सकता है। एक पक्षमुक्त नयी चेतना जगेगी, और नये जागरूक लोग सामने आयेंगे। श्री धीरेन् भाई ने ठीक कहा है कि अगर हम इस प्रश्न की ओर लापरवाह रहेंगे तो 'ग्रामदान का जीता हुआ मैदान हाथ से निकल सकता है।' गाँव की एकता खंण्डित न हो, और लोकमानस पर से दल का प्रभुत्व मिटे, इन दो चीजों को सामने रखकर काम करना है।

हमारा यह कार्यक्रम आरोहण का अगला कदम है। इससे ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की मंजिल की ओर बढ़ेगा। ग्रामदान की यही राजनीति है कि उसे प्रचलित राजनीति तोड़नी है।

एक लगाये हजार पाये

दीवाली आगयी। कई दिनों तक जूए का बाजार गर्म रहेगा। बूढ़े खेलेंगे, जवान खेलेंगे, बच्चे खेलेंगे। कोई हारेगा, कोई जीतेगा लेकिन हार-जीत तो खेलनेवाले की होती है, खेलानेवाले की तो जीत-ही-जीत है। खेलानेवालों को पुलिस का संरक्षण प्राप्त है। हमारे देश में कौन-सा अपराध है जिसे उदार पुलिस का संरक्षण नहीं प्राप्त है ?

अब तक पुलिस जूए में हिस्सा छिपकर लेती थी, लेकिन अब सरकारें खुलकर किस्मत के खेल में उतर आयी हैं। कितने ही राज्यों में लाटरियाँ बेची जा रही हैं। लालच यह है कि जीतनेवालों को घर बैठे हजारों रुपये मिल जायँगे। बाकी रुपया क्या होगा ? सरकार जनता के निकास और भलाई के कामों में खर्च करेगी।

सरकार के पास रुपये की कमी है इसलिए उसने रुपया प्राप्त करने का यह नया उपाय निकाला है। यह जबरदस्ती वसूल किया जानेवाला टैक्स नहीं है। यह वह पैसा है जिसे 'गवाने' के लिए लोग खुशी के साथ तैयार हैं। कौन जाने किस खुश-किस्मत को एक लगाने से हजार मिल जाये !

जूए और लाटरी में क्या अन्तर है ? जनता की दृष्टि से अन्तर हो भी लेकिन जो सरकार अपनी जनता के नैतिक उत्थान के लिए व्याकुल है, उसकी दृष्टि से क्या अन्तर है ? क्या हम देख नहीं रहे हैं कि 'सस्ते पैसे' (चीप मनी) की लत ने सरकार और जनता दोनों को कहाँ पहुँचाया है ? पैसा भी सही या गलत हो सकता है, यह विवेक ही समाप्त हो गया। शराबखोरी बढ़ाकर पैसा कमाने में सरकार को

www.vinoba.in

संकोच नहीं है। किस्मत का खेल खेलाकर आमदनी करने में भी संकोच नहीं रहा। क्या यह माना जाय कि अब सरकारी वेश्यालय के दिन दूर नहीं रह गये हैं?

यह कहना निरर्थक है कि लाटरी निर्दोष व्यसन है जिसका विरोध करना पावित्र्यवाद के सिवाय और कुछ नहीं है। यों ही हमारे देश के जीवन का नैतिक ताना-बीना ढीला हो गया है। हमारे लिए पैसा परमेश्वर बन गया है। सभ्य जीवन के मूल्य उपहास और अनास्था के विषय बनते जा रहे हैं। सेक्स, हिंसा, सिनेमा, शराब और जूए के साथ लाटरी को रखकर हम सोचेंगे तो साफ दिखायी देगा कि मेहनत के सिवाय दूसरे किसी ढंग से की गयी कमाई पतन का कारण बनती है। पतन का बढ़ावा कम-से-कम सरकार तो न दे?

सच बात यह है कि अगर हमारी सरकारें जनता के कल्याण की चिन्ता थोड़ी कम कर दे तो जनता का बड़ा भला हो। •

भारत में ग्रामदान 'प्रखण्ड'दान जिलादान

१. दरभंगा	जिलादान में	प्रखण्डदान	४४	ग्रामदान	३,७२०	
२. पूर्णिया	,,	,,	३८	,,	८,१५७	
३. मुजफ्फरपुर	,,	,,	४०	,,	३,९१७	
४. चम्पारण	,,	,,	३६	,,	२,८९०	
५. सहरसा	,,	,,	२३	,,	२,३९०	
६. सारण	,,	,,	४०	,,	१,०५१	(अपूर्ण)
७. तिरुनेलवेली	,,	,,	३१	,,	२,८९६	
८. बलिया	,,	,,	१८	,,	१,४६६	
९. उ० काशी	,,	,,	४	,,	५६६	
१०. टीकमगढ़	,,	,,	६	,,	७७०	
भारत में	जिलादान १०	प्रखंडदान	४५०	ग्रामदान	७१,७२८	
बिहार में	,, ६	,,	२७२	,,	३०,२६८	
उ० प्रदेश	,, २	,,	४९	,,	८,५५८	
तमिलनाड	,, १	,,	५०	,,	५,३०२	
मध्यप्रदेश	,, १	,,	८	,,	३,२६७	

दि० १०-१०-१९६८ —कृष्णराज मेहता

देश के आर्थिक जीवन में गलत प्रवाह

उसे कैसे रोकें?

गांधी-दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मश्रूवाला ने हिन्दुस्तान के गाँवों का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों-का-त्यों बना है :—

"हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है, पर हिन्दुस्तान की संपत्ति सम्बन्धी आज की अधिकांश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँवों का कच्चा माल शहर में पटता है तथा शहरों में बने पक्के माल से गाँवों को पाटने की कोशिश की जाती है। जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतों और जंगलों में लगभग मुफ्त मिल सकते हैं, उनके बदले शहरों और विदेशों में बना हुआ देखने में थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांश में दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम में लाने का फैशन बढ़ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धन्धे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। ऐसा अधिक आकर्षक सामान आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है। ये सब चीजें गाँव की वस्तुओं से सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है।

"इसके सिवा व्यापारियों की संकुचित और तुरन्त मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत-से देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पड़ते में महँगा न होते हुए भी, खरीददार के लिए महँगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज में देहात के हाथ में रह सकता है वह भी कारखानों और विदेशियों के हाथ में चला गया है।

"जब अर्थशास्त्र और जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन झुकेगा।

"इस प्रकार आज संपत्ति देहात से शहरों में चली जा रही है और देहात हर दृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं।"

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है। यह कैसे बदलेगा?

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी एवं शांति-सेना) के जरिये आप इस प्रवाह को बदल सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की जन्म-शताब्दी का साल है।
आइए, इस प्रवाह को बदलने में सब जुट जायँ।

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

www.vinoba.in

गांधी-विचार के अनुवर्तन की आवश्यकता

उपासना का नया आधार बनाने की जरूरत नहीं

—गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष : शुभारम्भ के अवसर पर आचार्य विनोबा का भाषण—

• वे एक दूसरी कोटि के थे, और हम दूसरी कोटि के हैं, ऐसा ख्याल रखकर अगर हम गुणगान या गुणवर्णन करें महापुरुषों का, तो हम आत्महत्या ही करेंगे।

• भगवान की कृपा है कि वह अलौकिक पुरुष पैदा नहीं हुए थे। वह सामान्यजन थे और सामान्यजन होकर भी अपनी प्रत्यक्ष साधना से, और सत्यनिष्ठा से उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया, वह किया।

मेरे लिए और बहुतों के लिए, कह सकते हैं सबके लिए आज आत्मपरीक्षण का दिन है। गांधीजी के जाने के बाद हम क्या कर सके हैं, क्या नहीं कर सके हैं, क्या गलत कर सके हैं इसका हमको निरीक्षण करना चाहिए। जब मैं अपना परीक्षण करता हूँ, तो ध्यान में आता है कि जो थोड़ा भी हम कर सके हैं वह उनके नाम का प्रभाव है। जो बहुत हम गलत कर सके हैं— मैं अपनी बात बोल रहा हूँ—वह मेरी अपनी कमाई है। और जो हम नहीं कर सके हैं वह ईश्वर की इच्छा है।

भगवान का नाम : महापुरुष का काम

इस तरह मैंने अपने लिए त्रिविध विभाजन कर लिया अपने कर्तृत्वों का। उनका गुणगान तो मैं नहीं करूँगा यहाँ। कुल दुनिया गुणगान गा रही है लेकिन हाँ, वे एक दूसरी कोटि के थे और हम दूसरी कोटि के हैं, ऐसा ख्याल रखकर अगर हम गुणगान या गुणवर्णन करें महापुरुषों का, तो हम आत्महत्या ही करेंगे। हमको समझना चाहिए कि जिस धातु के वे बने थे उसी धातु के हम भी बने हैं। और अगर महापुरुषों के गुणस्मरण का, गुणवर्णन का, गुणगान का यह परिणाम होता हो कि हमको अपनी आत्मशक्ति का कुछ भान होता हो, तब तो वह गुणवर्णन हमारे काम में आया और दुनिया के काम में आया और उससे उन महापुरुषों को सन्तोष भी होगा। लेकिन, जैसा मैंने अभी कहा कि हम माने कि हम तो प्राकृत हैं, हम जैसे चलते हैं वैसे ही चलेंगे और वह कोई महान् हैं तो हम उनका स्मरण करते जायेंगे; और सिर्फ स्मरण मात्रेण हमारे पाप कटेंगे, ऐसी अगर हम कल्पना करेंगे तो महापुरुषों के लिए बड़ा अन्याय होगा। हाँ, भगवान के लिए कह सकते हैं कि उनके स्मरण मात्र से हमारे पाप कट सकते हैं।

भगवान और महापुरुष का इतना फर्क हमको समझना चाहिए कि भगवान के स्मरण मात्र से पाप हमारे कट सकते हैं। लेकिन महापुरुषों के नाम-स्मरणमात्र से पाप नहीं कट सकते हैं, बल्कि हम उनमें जो गुण पाते हैं उनका अनुवर्तन करें, यह हम पर जिम्मेवारी आती है। यथाशक्ति जितना हो सकता है उतना हम करेंगे यह मान करके कि आत्मा में पूर्ण-शक्ति भरी है। तब तो वह गुणगान हमारे काम में आयेगा।

गांधी : अलौकिक पुरुष नहीं सामान्य जन

ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी में इस सिलसिले में एक सुन्दर वचन कहा है—मुक्ताते निर्धारिता, लाभेआ पुलीय मुक्तता—मुक्त पुरुषों का वर्णन करके निर्धारण करने में हमको अपनी मुक्तता का भान होता है। अपनी मुक्तता का दर्शन हम को मिलता है।

बहुत खुशी की बात है कि गांधीजी हमारे लिए इतने बड़े महापुरुष हो गये, फिर भी भगवान की कृपा है कि वह अलौकिक पुरुष पैदा नहीं हुए थे। जैसे शुकदेव जन्मतः ज्ञानी हो गये, कपिल महामुनि पैदा होते ही माता को उपदेश देने लगे, और भगवान कृष्ण को कहना पड़ा—सिद्धानां कपिलोमुनिः ; या जैसे शंकराचार्य जन्मे और आठ साल में वेदाभ्यास पूर्ण करके भाष्य लिखने लगे। महात्मा गांधी इस कोटि में नहीं जन्मे थे। वह सामान्य जन थे और सामान्य जन होकर भी अपनी प्रत्यक्ष साधना से, और सत्यनिष्ठा से जो कुछ भी उन्होंने प्राप्त किया वह किया। इसलिए उनका जीवन हमारे लिए अधिक अनुकूल पड़ेगा, अनुवर्तनीय होगा बनिस्बत उन पुरुषों के जो अद्वितीय पैदा ही हुए।

उपासना के नये आधार की आवश्यकता नहीं

बहुत लोग इन दिनों महात्माजी का गुणगान करते हैं कि मानों वे भगवान ही हैं। राम और कृष्ण की कोटि में उनको डालते हैं। हम यह मानते हैं कि मानव-शरीर में एक आकांक्षा रही है कि भगवान के गुणों का साक्षात्कार इस शरीर में हो। और इसलिए कोई महापुरुष अवतार स्वरूप हुआ और पूर्ण ब्रह्म और साक्षात्ब्रह्म मानव रूपधारी बना ऐसा मानना हमारे लिए उपासना का एक आधार बनता है। उस दृष्टि से उसकी कीमत भी है। लेकिन वह तो हमको पर्याप्त मिल गया राम और कृष्ण। अब तीसरे की जरूरत ही क्या? उपासना के लिए आधार हमको चाहिए तो वह मिल चुका है। अब नये आधार की कोई जरूरत नहीं।

आखिर में महात्मा गांधी ने क्या किया? जब उन पर गोली चली तो पहला काम उन्होंने यह किया कि दोनों हाथ जोड़ दिये प्रणाम! और साथ-साथ दूसरा काम किया—हे राम! समाप्तम्। तुलसीदास ने गाया—'जनम जनम मुनि जतन कराही, अन्तराम कहिं आवत नाही।' अनेक जन्म प्रयत्न करते हैं फिर भी अन्तकाल में 'राम कहि आवत नाहीं।' तो राम अन्तकाल में उनके मुख से निकला। वही हमारा आधार है जो उनका आधार था। वह पर्याप्त आधार है, इसलिए अब नया राम और नया कृष्ण बनाने की जरूरत नहीं। एक सामान्य मनुष्य आपके जैसे और हमारे जैसे शरीर में पैदा हुआ, परिस्थिति के साथ झगड़ते हुए, आत्मशुद्धि की साधना करते हुए और निरन्तर

www.vinoba.in

अपना हृदय मुक्त रखते हुए जहाँ-जहाँ से सत्य का जितना भी अंश मिला उतना साभार स्वीकार करते हुए आगे बढ़ा। यह मिसाल हमारे लिए पर्याप्त है। उसका अनुवर्तन, अनुसरण, जितना अपने से हो सके, करने की कोशिश करें और आज के दिन आत्म-निरीक्षण परीक्षण करके चित्तशुद्धि पूर्वक भगवान की शरण में जायँ।

बाबा एक सामान्य-जन

मैंने कहा, हमको कोशिश करनी चाहिए अनुवर्तन की। और 'मारग में तारण मिले सन्त राम दोई, सन्त सदा शीश ऊपर राम हृदय होई।' ऐसे हृदय में रामजी को साक्षी रखकरके बाबा ने इतना सोचा कि हम सामान्य-जन हैं। सामान्य जनों की सेवा में हमसे जितना हो सकता है किया जाय। जो राह गांधीजी ने दिखाई अहिंसा की राह, प्रेम की राह, गांधीजी के जाने के बाद, उस पर चलने की कोशिश बाबा ने की। और एक रास्ता मिल गया ग्रामदान का। अभी श्री रामसूरत भाई ने आपके सामने जिक्र किया कि वाराणसी जिला ग्रामदान करने की कोशिश हो रही है। और उन्होंने कहा कि इस साल तक या जनवरी तक जिलादान हो सकेगा। मालूम नहीं ३० जनवरी बताया कि क्या बताया, कोई अच्छा दिन बताया होगा।

यह हमलोगों का दुर्भाग्य है कि शुभ दिन हमको दूर ढकेलने में मदद करते हैं।

एक जगह हम गये थे एक बड़े नगर में। उनका नाम नहीं लेना चाहते आज हम। उन्होंने हमको मानपत्र समर्पण किया और क्या क्या संकल्प किया है म्युनिस्पैलिटी में या नगर निगम में उसका वर्णन किया—'दो साल पहले की बात है कि हमने तय किया कि भंगियों की कष्टमुक्ति के लिए, जो आज सिर पर रख कर मैला ढोते हैं, उनको गाड़ी देने का प्रयत्न करेंगे और गांधीजी के जन्मदिन तक उसे पूरा करेंगे। तो मैंने उनको कहा कि मान लीजिए कि गांधीजी की जयन्ती के दो महीने पहले यह हो जाय तो गांधीजी नाराज होंगे क्या?

तो हमको भी समझना चाहिए कि ३० जनवरी एक पवित्र दिन है इसमें कोई शक नहीं; लेकिन आज का दिन सबसे ज्यादा पवित्र है। यह हमको महसूस होना चाहिए। 'कल को जाने कल की' कल का दिन है कि नहीं भगवान जाने।

यात्री-मानस की आत्म प्रवंचना

इस वास्ते अगर हो सकता है तो यह काम आज होना चाहिए पूरा, आज नहीं होता है तो कम-से-कम कल पूरा हो जाय। लेकिन हम यह तय करें कि ३० जनवरी एक अच्छी तारीख है तो उस तारीख तक हम पूरा करेंगे यानी अपने कार्य को उतना दूर ढकेलेंगे, इसको हमने यात्री-मानस नाम दिया है। यात्री क्या करता है? जो भगवान अपने हृदय में अधिष्ठित है उसको यहाँ से बारह सौ मील ढकेल देगा अमर नाथ, और कहेगा अमरनाथ जा रहा हूँ भगवान का दर्शन करने के लिए। खुद ही उसे ढकेल दिया इतनी दूर फिर उसका पीछा कर रहा है। तो इसका नाम है यात्रीमानस। यही यात्री-मानस है कि हम भी अपने काम को पीछे ढकेल दें किसी पवित्र दिन के नाम से; यह न पहचानते हुए कि आज का दिन ही हमारे हाथ में है; आज का दिन ही सबसे पवित्र है। इतनी 'आत्म-प्रवंचना' होती है, इसीवास्ते हमारी अपील है कि वाराणसी जिले जैसा उत्तम जिला—इतने महान् भक्त यहाँ बैठे हुए हैं उनकी इतनी सारी शक्ति उपलब्ध होते हुए वाराणसी को और तीन महीने की जरूरत क्या है?

क्रान्तिकार्य कैसे होता

यहाँ मैं आया, वाराणसी जैसे केन्द्र स्थान में, वाराणसी यानी क्या? तुलसीदास ने लिखा है "विश्व विकासी काशी।" काशी शब्द का आजकल अर्थ भी ठीक से ध्यान में आता नहीं। उसको 'प्र' उपसर्ग लगाने से अर्थ ध्यान में आता है 'प्रकाशी'। काशी धातु का अर्थ प्रकाशित होना है। संस्कृत में तो काशी कहने से अर्थ होता है प्रकाशी। सारे विश्व में प्रकाश फैलानेवाली। और ५००-६०० साल पहले जब भारत में मुसलमानों का राज्य था, तब एक कहावत थी—इधर काशी उधर काबा।

तो दुनिया को प्रकाश देनेवाली नगरी में मैं आया हूँ। और ये सारे भाई यहाँ बैठे हुए हैं। क्यों-न सब उठ खड़े हो जायँ और लगा दें जोर १५ दिन, खतम हो गया मामला! क्रान्ति के जो काम होते हैं वे अति शीघ्र होते हैं। अगर धीरे-धीरे आप करेंगे तो कभी क्रान्ति होनेवाली नहीं है। अगर हम पुण्य कार्य धीरे करते हैं तो पाप जोर करता है। हम 'वेकुअम' में काम नहीं कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि पाप चुप है। अगर पाप चुप हो, तब हम धीरे-धीरे पुण्य-कार्य करेंगे, कोई हर्ज नहीं। पाप का जोर है और ऐसी हालत में पुण्य-कार्य हम धीरे-धीरे करेंगे तो पाप जोर करेगा।

क्या कहा जाय काशी के वर्णन में? कौन नहीं रहा काशी में? बुद्ध रहे, महावीर रहे, शंकर रहे, रामानुज रहे, वल्लभ रहे, तुलसी दास रहे, कबीर रहे, शंकरदेव रहे, माधवदेव रहे, एकनाथ रहे, रामदास रहे, कौन नहीं रहा? इसलिए आपलोग अगर सोचो तो—सिर्फ वाराणसी ही नहीं, लोगों ने संकल्प कर रखा है कि इस साल के अन्त तक सारा उत्तरप्रदेश ग्रामदान में लायेंगे—ये छोटी चीज नहीं। गंगा शुरू होती है तो छोटी-सी धारा के रूप में, लेकिन गंगा-सागर में जहाँ पहुँचती है वहाँ एकदम विशाल रूप प्रकट होता है।

भूदान-गणित

यह (ग्रामदान) धारा शुरू हुई थी सौ एकड़ दान द्वारा। हो गये उसको १७ साल। १७ साल पहले एक गाँव में हरिजनों की माँग पर हमको १०० एकड़ मिला था। हमने उस रात में बेचैन होकर भगवान के साथ प्रश्न किया और उसको पूछा कि क्या किया जाय? तो भगवान ने कहा—'तू उठ लग काम में कल से, भूदान प्राप्ति का काम कर' बाबा का पहला विश्वास है भगवान पर, दूसरा विश्वास है गणित पर। तो बाबा ने गणित कर लिया। हिन्दुस्तान में ५ करोड़ भूमिहीन लोग हैं और एक एकड़ एक आदमी को देना है तो ५ करोड़ एकड़ प्राप्त करना होगा। और भारत में ३०-३५ करोड़ एकड़ जमीन है तो छठा हिस्सा प्राप्त करना होगा—सारे भारत का छठा हिस्सा। तो

अन्दर पूछा गया कि इतना माँगते फिरेंगे तो क्या इतनी जमीन दान में मिल सकेगी ? तो भगवान ने कहा—'देखो, जिसने बच्चे के पेट में भूख रखी उसने माता के स्तनों में दूध रखा। वह अधूरी योजना नहीं करता। इसलिए यह इशारा समझकर तू काम में लग। और दूसरे दिन से मैंने काम शुरू किया, बिना किसी से 'कन्सल्ट' किये। अगर मैं कन्सल्ट करता, सलाह मशविरा लेता, तो हमारे प्यारे-से-प्यारे जो साथी थे, वे सलाह देनेवाले नहीं थे कि इस 'ऐडवेन्चर' के लिए निकल पड़ो। इस जमाने में यह एक मूर्खता मानी जायेगी। इस वास्ते हमने किसी को 'कन्सल्ट' नहीं किया। हो गया हमारा सम्बन्ध भगवान से—और शुरू कर दिया।

वह जो छोटी-सी धारा निकली सो एकड़ दान की, वहाँ अब प्रखण्ड-के-प्रखण्ड दान हो रहे हैं और बिहार ने तो प्रस्ताव किया है प्रान्तदान का और आधा हो चुका, उत्तर बिहार जिसको कहते हैं—६ जिले पूरे-के-पूरे। उत्तर प्रदेश के १५ जिले समझ लीजिये। एक-एक जिला ४० लाख का है। वह सब ग्रामदान में आ गये। यह सारा होगा उसके बाद ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी होगी। गाँव-गाँव में काम खड़ा करना होगा। बहुत बड़ा कार्यारम्भ हो रहा है। यह कोई कार्यसमाप्ति नहीं है। यह तो बुनियाद बन रही है। लेकिन १०० एकड़ दान से प्रान्तदान की भाषा बोलने लगे। उत्तर प्रदेशवालों ने संकल्प किया प्रान्तदान का।

मंदमति सज्जनों की चाह : हमारी राह

और हमारे राजनीतिक साथी, मालूम नहीं क्या उनके दिमाग में है! इतना 'डल' देखता हूँ—उन लोगों का दिमाग। उनसे बढ़कर मंद मति मैंने पाया नहीं। हैं बेचारे सज्जन लोग, इसमें कोई शक नहीं। अनेक सज्जन पड़े हैं कांग्रेस में, अनेक सज्जन पड़े हैं पी० एस० पी० में, अनेक एस० एस० पी० में। अनेक पार्टियाँ हैं और उन पार्टियों में अनेक सज्जन हैं इसमें कोई शक नहीं। उनकी सज्जनता के बारे में मुझे कुछ कहना नहीं है। वे चाहते यही हैं कि हमारे हाथ में सत्ता आये, ताकि हम सेवा करें, सत्ता के द्वारा सेवा। लेकिन भगवान बुद्ध ने क्या रास्ता दिखाया ? उनके हाथ में राज्यसत्ता थी, सारी की सारी छोड़कर निकले। क्या वे बेवकूफ थे ? अगर उनको जरा भी खयाल होता कि सत्ता के द्वारा कोई सेवा हो सकती है तब तो उनके हाथ में सत्ता थी ही। वह सब छोड़कर निकले तब काम हुआ। यह हमारे लोगों को सूझ नहीं रहा। सारे इकट्ठा हो कर, नाना प्रकार की चर्चा करते हैं कि इसके-उसके साथ मेल-मिलाप करो। इसके साथ तोड़ो, उसको साथ फोड़ो, जोड़ो, तोड़ो, फोड़ो—तीनों कार्यक्रम चलाये गये, और क्या ऊधम मचाये गये, उत्तर प्रदेश में। और क्या ऊधम मचाया बिहार में। और इन लोगों की सम्मिलित अक्ल का परिणाम यह है कि यहाँ और वहाँ गंगा मइया के प्रदेश में राष्ट्रपति का राज्य चल रहा है। इसका कारण क्या है ? अकल नहीं।

समाज की सेवा प्रथम करें यह सोचते नहीं। हमको मिले सत्ता का अधिकार फिर करेंगे सेवा। अरे तुमको सत्ता क्या सोच करके दें ? क्या तुम्हारा मुँह देख करके ? कोई सेवा तो की नहीं। 'सेवा तो की नहीं, सेवा करेंगे ?' मैंने कहा, आओ जरा मैदान में। गाँव-गाँव में जाओ, लोक संपर्क करो, लोगों की सेवा करो, तब लोग तुमको खुशी से ऊपर भेजेंगे, अगर ऊपर भेजना चाहेंगे तो भेजेंगे ऊपर! जिसका नसीब कम होगा उसको भेजेंगे ऊपर। जिसका मजबूत होगा उसको कहेंगे कि तू गाँव की सेवा के लिए रह जा। अच्छा आदमी है। तेरा उपयोग इस गाँव में होगा। दूसरे लोग हैं तो उनका उतना उपयोग नहीं है। तेरा दिमाग गाँव में उतना नहीं चल सकता, जा तुझे ऊपर भेज देंगे, जा! यों करके सर्वोत्तम पुरुषों को गाँव की सेवा के लिए रख लेंगे; गाँव-गाँव की सेवा के लिए; और गौण पुरुषों को वहाँ भेज देंगे। गौण याने गुणवान। कोई न-कोई गुण हैं उनमें इस वास्ते वे गौण पुरुष हैं।

मुझसे धीरेन्भाई कहते थे कि गांधीजी के जमाने में जो आन्दोलन हुए, उनमें हमें गाँवों में जाना ही नहीं पड़ा। लखनऊ, कानपुर, काशी, प्रयाग, कलकत्ता, पटना आदि नगरों में हुआ कुछ, चले इधर-से-उधर। अखबारों में प्रचार किया गया। जुलूस निकाले गये, होहल्ला हुआ। क्योंकि कार्यक्रम सारा 'निगेटिव' था, अंग्रेजों को यहाँ से हटाना था! थे कितने बेचारे दो लाख, तीन लाख! आज वह सारा राज्य हमीं चला रहे हैं। तो हमारी भावना उसमें से हट जाय तो वे कहाँ रहनेवाले थे! वह 'निगेटिव' कार्यक्रम था तो हमको गाँव-गाँव में जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। यह राज्य उनका यहाँ हमीं ने चलाया, हमारे मन में से वह हट गया तो हट गया।

आन्दोलन देने का, न कि लेने का

अब यह देने का आन्दोलन है, लेने का नहीं। वह तो लेने का था। अब इसमें हरेक को अपना थोड़ा हिस्सा देना है। ग्रामसभा को जमीन देना, मिल्कियत का हिस्सा देना, अपना अंश देते रहना, अर्थात् यह देने का आन्दोलन है आदमी लेने में तो हमेशा जोर लगाता है, लेकिन देने में जरा ढीला पड़ता है। तुलसीदास ने कहा है, अरे भाई, 'येन केन विधि दीजै दान, करे कल्याण।'

मानव को भगवान का विशेषदान

अरे भाई हाथ दिये कर दान रे! हाथ काहे के लिए दिये हैं ? किसीको तमाचा मारना है, तो ये हाथ काम में आते हैं, किसी को नदी में ढकेल कर डुबोना है तो भी काम में आते हैं। यह हाथ का उपयोग है क्या ? मानव को हाथ दिया किन्तु दूसरे प्राणियों को नहीं दिया। मानव को विशेष दान है भगवान का—उत्तम वाणी और दो हाथ, एक हाथ नहीं! इसलिए दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानों काम।' यही सयानों काम! कबीर कह रहा है—यही अकल का काम है। यह कोई बहुत बड़ी उदारता या बहुत बड़ा परोपकार का काम नहीं, अकल का काम है। अगर तुम्हारे घर में दाम बढ़ा है तो खतरा है। उस खतरे का अनुभव भारत को हो रहा है।

गलत प्रकार का यहाँ 'आर्गनाइजेशन' हुआ। उसके कारण नीचे के स्तर में कुछ काम नहीं हुआ, अब उससे ऊपर के स्तर में पैसा बढ़ा, बड़े-बड़े कारखाने खुल गये।

खेती वैसी-की-वैसी रही। आदेश आया था कि अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्! तुम व्रत करो कि अन्न बढ़ाना है। और यह कौन कह रहा है? उपनिषद् कह रही है, ब्रह्मविद्या की किताब कह रही है। अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्। यह तुम व्रत लो। क्यों व्रत लेने के लिए कहती है अन्न उत्पादन का? इसलिए कहती है कि अगर अन्न उत्पादन नहीं हुआ तो मनुष्य मनुष्य को खायेगा। करुणा नहीं रहेगी, और जहाँ करुणा नहीं, वहाँ ब्रह्मविद्या है ही नहीं। इसलिए ब्रह्मविद्या का आधार करुणा और करुणा के लिए 'अन्नं बहु कुर्वीत।' वह तो हम भूल ही गये।

भिखमंगा देश भारत को भीख माँग करके अनाज लाना पड़ता है, शरम होनी चाहिए। लेकिन यह कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि प्रधान के मानी ध्यान में आया कि नहीं? कृषि प्रधान यानी उद्योग शून्य देश! कहने को कहते हैं कृषि प्रधान। उद्योग तो यहाँ हैं ही नहीं, जो कुछ है तो कृषि है। और उस कृषि की तरफ भी ध्यान नहीं दिया। और ऊपर-ऊपर के कुछ उद्योग बिठा दिये। परिणाम यह हुआ कि 'मिडिल क्लास' के और ऊपर के क्लास के हाथ में पैसे आ गये। और उतना अनाज है नहीं, तो भाव बढ़ गये। तो यह सारा जो सिलसिला चला; चक्र, दुष्टचक्र, उसका परिणाम यह हुआ कि पैसे आ गये घर में। तो परिणाम क्या हुआ? नाना प्रकार के सिनेमा, नाना प्रकार के फैशन बढ़े। क्या भारत में दूध बढ़ा प्रति व्यक्ति?

एक दुष्टचक्र और उसका परिणाम

पाकिस्तान हिन्दुस्तान अलग होने के पहले भारत में ७ औंस दूध था, प्रति व्यक्ति ७ औंस। ७ औंस याने साढ़े सत्रह तोले। पाकिस्तान अलग होने के बाद दूधवाला बड़ा हिस्सा अलग हो गया, इस वास्ते भारत में प्रति व्यक्ति ५ औंस दूध हुआ। १९४८ की बात है। अभी वे मिले थे, दातार सिंह। गोरक्षा के बड़े भारी ज्ञाता और तज्ञ पुरुष हैं। उनके सामने हमने सवाल किया कि ५ औंस दूध में कैसे चलेगा? तो उन्होंने कहा कि आप गलती कर रहे हैं। तो मैंने कहा कि आपको जानकारी ज्यादा होगी? वे बोले, 'अभी भारत में ३ औंस दूध है, ५ औंस नहीं है। ५ औंस सन् '४८ की बात है।' क्या सुनियेगा गोरक्षा? ३ औंस दूध में काम चलेगा भारत का? अमेरिका में ढाई पौंड है दूध प्रति व्यक्ति। मांस तो खाते ही हैं, अनाज भी है ही। साथ में ढाई पौंड दूध है प्रति व्यक्ति, और यहाँ है प्रति व्यक्ति ३ औंस। तो दूध तो नहीं बढ़ा। तो क्या प्रति व्यक्ति अनाज बढ़ा? नहीं बढ़ा। तो क्या प्रति व्यक्ति तरकारी बढ़ी? नहीं बढ़ी। फल बढ़ा? नहीं बढ़ा। तो क्या बढ़ा? सिगरेट-बीड़ी बढ़ी, चाय बढ़ी, और तरह-तरह के व्यसन बढ़े।

खतरा टलेगा, लेकिन कैसे?

मैं समझा रहा था—पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम, खतरा नं० १। इसलिए दोनों हाथ उलीचिये, दान दीजिये, दोनों हाथों से दीजिये, एक हाथ से नहीं! यह दान की वृत्ति अगर भारत में चलेगी तभी संविभाजन होगा। दानं संविभागः! दान का यह भी अर्थ जरा समझना चाहिए।

काशी नगरी विद्वानों की नगरी है। मैं तो कोई इतना विद्वान् मनुष्य नहीं हूँ। मुझे अनेक भाषाओं का साहित्य पढ़ने का थोड़ा-सा मौका मिला है, इसलिए कुछ कह सकता हूँ—'दा' धातु के संस्कृत में दो अर्थ हैं—एक है काटना, और दूसरा है देना। दो अर्थ हैं 'दाकड़म्'। 'दाकड़म्' याने काटने का साधन। बंगाली में भी ऐसा ही शब्द है—मैं भूल गया उसको। असमिया में भी वही 'दा' माने काटना, उससे 'दाकड़म्।' 'दा' मानी देना। दोनों धातु इकट्ठा होने पर—'काटो और दे दो।'

आशय यह है कि अपना थोड़ा काटना चाहिए। जो अपनी खास चीज है उसे काट-कर थोड़ा दूसरे को देना—इसका नाम है दानम्। काटना और देना—दो धातु इकट्ठा हो करके दान बना, यह ध्यान में ले करके शंकराचार्य ने 'दानं संविभागः' कहा और गौतमबुद्ध ने भी वही शब्द इस्तेमाल किया। इसका मतलब—यह शब्द, यह व्युत्पत्ति भारत की मान्य उत्पत्ति है, बुद्धों के प्राचीनकाल से मान्य है। ऐसा उसका अर्थ होता है।

गाँव-गाँव को पाँव पर खड़ा करने का मार्ग

मैं कह यह रहा था कि एक मार्ग हमको मिलता है जिस आधार से हम गाँव-गाँव को खड़ा कर सकते हैं और गाँव-गाँव अपने पाँव पर खड़ा हो जायेगा तो 'करेक्शन' होगा। जो-जो गलतियाँ होती हैं सरकारों से, उन सरकारों की गलतियों का 'करेक्शन' होगा, अन्यथा हिन्दुस्तान की जनता डूब मरेगी।

मैं देख करके आया हूँ वह नक्सालबाड़ी का क्षेत्र। मैं उसके नजदीक गया था। लोग मिलने आये तो मैंने उनको प्रेरित किया ग्रामदान के लिए और ग्रामदान वहाँ शुरू हुआ। उन लोगों ने तीर कमान ले करके शुरू कर दिया था क्रान्ति का आन्दोलन, छीन लेना जमीन लोगों की। मैंने कहा—'कैसे मूर्ख हो रे, आप लोग। अगर सफल हो सकते इसमें तो बाबा राजी था।' बाबा हर हालत में स्टेटस्को पसन्द नहीं करता, बशर्ते कि आप सफल हों! लेकिन आप कैसे मूर्ख हैं कि आपने ही सत्ता दी, 'गवर्नमेंट' को मिलिटरी रखने की जिम्मेवारी दी, और आप हाथ में एक चाकू ले करके, एक धनुष ले करके आयेंगे क्रान्ति करने को? और वह सरकार 'मिलिटरी' भेजेगी, तोपें चलायेगी, तो उस हालत में आपका क्या होगा? यह निरी मूर्खतावाली बात होगी। इसवास्ते आपसे भारत में क्रान्ति हो नहीं सकती।

आपको समझना चाहिए—क्रान्ति का सर्वोत्तम तरीका यही है, जो ग्रामदान के द्वारा चल रहा है। इसको उठा लेना सब लोग। सब पार्टीवाले उठा लें, सरकार के आफिसर लोग उठा लें, शिक्षक आदि वर्ग उठा लें। अब करें इसको, जरा उठायें जोरों के साथ। तब गांधीजी के जाने के बाद कोई पुरुषार्थ का काम हमारे हाथ से हुआ, ऐसा होगा। अन्यथा गांधीजी हिन्दुस्तान में अपमानित हैं, और दुनिया में कहीं उनका मान होगा तो होगा; ऐसी हालत हो जायेगी!

वाराणसी : २ अक्तूबर '६८

कश्मीर समस्या : विधायक दृष्टिकोण और रचनात्मक कदम की आवश्यकता

—जम्मू-कश्मीर लोक-परिषद् में श्री जयप्रकाश नारायण का उद्घाटन भाषण—

[राह चलते यह आरोप किया जाता है कि जे० पी० तो पाकिस्तान को कश्मीर का दान दे डालने की बात कहते हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि हमारे देश में बड़ों से लेकर छोटों तक ने समस्याओं से कतराने की एक अजीब पद्धति विकसित कर ली है। श्री जयप्रकाश नारायण का प्रस्तुत भाषण उक्त आरोप को मिथ्या साबित करते हुए कश्मीर-समस्या के प्रति एक विधायक दृष्टिकोण अपनाने और रचनात्मक कदम उठाने की प्रेरणा देता है। —सं०]

मित्रो,

मैं श्री शेख अब्दुल्ला के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण परिषद् का उद्घाटन करने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। शायद आप जानते होंगे कि मैं कुछ झिझक के साथ यहाँ आया हूँ, बल्कि मैं तो इन्कार करने का ही निश्चय कर चुका था, परन्तु अन्ततः दो कारणों से मैं यहाँ आने के लिए प्रेरित हुआ। एक तो, श्री शेख साहब के प्रति मेरा प्रेम और आदर है, और दूसरा यह, कि मुझे आशा है कि दिल की गहराइयों से मैं जो अपने विचार सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त करूँगा, उनसे एक तो आपको किसी व्यावहारिक निर्णय पर पहुँचने में मदद मिलेगी, और दूसरे, भारतीय जनमत पर भी प्रभाव पड़ सकेगा कि वे वर्तमान परिस्थिति के बारे में वास्तविक और विधायक दृष्टि अपना सकें।

आपके प्रदेश में आने का सौभाग्य इससे पहले मुझे एक बार प्राप्त हुआ था। जनवरी सन् १९४७ की बात है; तब श्रीरामचन्द्र काक मुख्य मन्त्री थे और शेख साहब और उनके साथी जेल में थे। बख्शी गुलाम मुहम्मद उन दिनों दिल्ली में भूमिगत होकर काम कर रहे थे, जिससे राष्ट्रीय नेताओं का सम्पर्क बना रहे और वहाँ रहकर कश्मीर के आन्दोलन को मदद पहुँचा सकें। उन्होंने ही हमारे—उस समय मेरी धर्मपत्नी भी मेरे साथ थी—कश्मीर प्रवास का आयोजन किया था। वे हमारे साथ रावलपिण्डी तक रहे और बाद में स्व० मुन्शी अहमद दीन और 'नेशनल कान्फरेंस' के कुछ कार्यकर्ता हमारे साथ अंत तक रहे।

वह प्रवास बहुत कम समय का था और दुर्भाग्य से इस बार का प्रवास भी वैसा ही हो रहा है। उस समय मैं जो भी कुछ कर सका था वो यह कि जो लोग अपने की अनुपस्थिति में आन्दोलन चला रहे थे उनसे विचार-विनियम किया और अपनी टूटी-फूटी उर्दू में, मेरा ख्याल है, इसी मुजहद मंजिल में एक सार्वजनिक भाषण भी दिया था।

२१ वर्ष और ९ महीने के लम्बे अर्से के बाद, जो अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं से भरा हुआ अर्सा रहा है, अब पुनः इस प्रदेश में आया हूँ। परन्तु बीच की इस अवधि में यहाँ प्रत्यक्ष न आकर भी, यहाँ की बदलती परिस्थितियों से सम्पर्क रखने का मैंने प्रयत्न किया है। मेरा यह भी प्रयत्न रहा है कि अन्य समस्याओं की ही तरह कश्मीर समस्या की ओर भी देखते समय अमुक कुछ बुनियादी राजनैतिक सिद्धांतों और मूल्यों के आधार पर, जो मुझे प्रिय हैं, देखूँ। इस परिषद् में भी मैं वही करने जा रहा हूँ। शायद मुझे यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि इन इक्कीस वर्षों में यद्यपि मेरी राजनैतिक गतिविधियों और कार्य के स्वरूपों में काफी विकास और परिवर्तन हुए हैं, फिर भी वे बुनियादी सिद्धान्त और मूल्य वैसे ही अपरिवर्तित और अक्षीण बने हुए हैं। बल्कि सच बात तो यह है कि मेरी राजनैतिक गतिविधियों और कार्यों में मुझे जो भी परिवर्तन करने पड़े हैं, वे उन सिद्धांतों और मूल्यों को कार्यगत करने के लिए।

परिषद् का महत्त्व

अब प्रस्तुत अवसर की ओर आऊँ। सर्वप्रथम मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिषद् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और नाजुक है। मेरे ख्याल में, जम्मू और कश्मीर के इतिहास में यह पहला ही अवसर है कि इस प्रकार का प्रयास किया गया है। इसकी सफलता न केवल इस प्रदेश की जनता के लिए, बल्कि समूचे देश के लिए नूतन और उज्ज्वल दिन का अरुणोदय साबित हो सकती है। इसके विपरीत, इस परिषद् की विफलता से—हमेशा के लिए न भी सही, परन्तु जितनी दूर तक हम देख सकते हैं, उतने भविष्य तक तो उन राजनीतिक और मानसिक तनावों और अनिश्चय और भय के वातावरण को—जिनसे यह प्रदेश गत कई वर्षों से, खासकर १९५३ से जकड़ा हुआ है—दूर करने के सारे प्रयत्नों को धक्का लग सकता है। इसलिए मुझे आशा है कि इस परिषद् में भाग लेने वाले सब सदस्यों को इस बात का पूरा भान है कि उन्होंने कितना बड़ा दायित्व अपने ऊपर लिया है। इनके लिए विधायक दृष्टिकोण की अपेक्षा है, और अपेक्षा है अपने कर्तृत्व और पुरुषार्थ को अनिश्चय अथवा विफलता में खत्म न होने देने के संकल्प की। मैं आशा करता हूँ कि आप इस जीवन-मरण के प्रश्न पर विनम्रता और एक-दूसरे को ठीक से समझने की तैयारी के साथ विचार करेंगे और इस जटिल समस्या का एक समाधानकारक हल खोजने को उत्सुक हम लोगों पर, परिस्थिति की जो मर्यादा है, उसका भी ख्याल रखेंगे।

इस परिषद् के इस विशेष महत्त्व को देखते हुए, यह बड़ी निराशा पैदा करनेवाली बात है कि प्रादेशिक कांग्रेस और जनसंघ ने इसमें भाग लेने से इनकार किया। कोई शक नहीं कि उनका इनकार अकारण नहीं है, और मैं उनका महत्त्व कम करना नहीं चाहता हूँ, लेकिन अगर किसीकी किसी से असहमति—सर्वथा असहमति—भी क्यों न हो, तबभी उसके साथ बात तक करने से इनकार करना न तो रचनात्मक कदम है, न ही लोकतंत्र की भावना के अनुकूल है। मुझे मनुष्य की विवेक-बुद्धि पर भरोसा है, और मैं मानता हूँ कि आदान-प्रदान—जो लोकतंत्र की एक मूल भावना है, के आधार पर हम विचार

करने लगें तो ऐसी कोई गुत्थी नहीं है जिसे मानव की विवेक-बुद्धि सुलझा न सके।

www.vinoba.in

इस प्रदेश की समस्याएँ इतनी उलझी हुई हैं और उलझनों में डालनेवाली हैं, फिर भी देश के अधिकांश नेता इन समस्याओं के बारे में बिलकुल सतही दृष्टिकोण रखते हैं, और आत्म-तुष्टि की कोरी बातें कहते हैं। इस स्थिति में प्रदेश की समस्याओं पर विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले नेताओं की यह परिषद् इस प्रदेश के भविष्य के बारे में एक सर्वसम्मत राय कायम करे, तो निश्चय ही वह सही दिशा में उठाया गया कदम होगा। प्रदेश कांग्रेस और जनसंघ के नेताओं द्वारा जो सार्वजनिक वक्तव्य दिये गये हैं—इसमें कोई शक नहीं कि उनके दृष्टिकोण काफी महत्त्वपूर्ण हैं—उन्हें वे स्वयं इस परिषद् में आकर व्यक्त किये होते, तो उससे सर्वसम्मत राय पर पहुँचने में सहायता मिलती। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि राज्य की राजनैतिक परिस्थिति को समझने का एक महान् अवसर ठुकरा दिया गया।

फिर भी जैसा कि 'लन्दन एकॉनामिस्ट' के हाल के अंक में लिखा है—'परिषदों और अधिवेशनों का महत्त्व इस बात में नहीं है कि उनमें कौन-कौन भाग लेते हैं, बल्कि इस बात में है कि उसमें से क्या निकलता है।' इसलिए मैं आशा रखता हूँ, कि इस परिषद् की निष्पत्ति नयी प्रगति का प्रारम्भ-बिन्दु साबित होगी, जो यहाँ शान्ति और सुख लायेगी, जहाँ वर्षों से अनिश्चितताओं और दुःखों का साम्राज्य है।

कश्मीर में निपटारे की आवश्यकता

इस परिषद् के सामने चर्चा के लिए महत्त्व के प्रश्न प्रस्तुत करने से पहले, मैं उन लोगों से दो शब्द कहना चाहूँगा जो इस प्रदेश में तथा देश के अन्य प्रदेशों में भी यह दावा करते हैं कि कश्मीर में निपटारे के लिए कुछ भी शेष नहीं है। कश्मीर भी अन्य प्रदेशों की तरह, जैसे उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश, की ही तरह, भारत का अभिन्न अंग है। जो यह बात बोलते हैं वे सब-के-सब वास्तव में इस प्रश्न पर एकराय नहीं रखते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय जनसंघ तथा कांग्रेस के और भारत सरकार के भी कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय संविधान की धारा सं० ३७० को रद्द कर देना चाहिए और कश्मीर राज्य को भारत के अन्य भागों के साथ पूरा-पूरा मिला देना चाहिए; और फिर हर भारतीय नागरिक को कश्मीर में जाकर बेरोक जमीन खरीदने और वहाँ बसने देना चाहिए।

दूसरे कुछ लोग हैं, जैसे वर्तमान मुख्य मंत्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिक, जो इस बात पर जोर देते हैं कि कश्मीर तो भारत का अभिन्न अंग है ही, यद्यपि चर्चा का विषय यह रह गया है कि राज्य को किस मात्रा में स्वायत्तता दी जाय। इस सामान्य धारणा में और भी कई अन्तर्भेद हैं, जैसे—(१) राज्य से जम्मू को पृथक् करना चाहिए, (२) राज्य के अन्दर उस क्षेत्र को कुछ अमुक प्रकार की क्षेत्रीय स्वायत्तता के हक दिये जाने चाहिए। इन सुझावों में भी कई भिन्न दृष्टियाँ हैं।

इसके विपरीत श्री शेख अब्दुल्ला और उनके साथ अनेक लोग हैं जो यह मानते नहीं हैं कि राज्य का विलयन अंतिम रूप से और अपरिवर्तनीय ढंग से हो चुका है। यदि शेख साहब महत्त्वहीन कोई साधारण व्यक्ति होते और उनके साथ वैसे ही कुछ मुट्ठी भर नगण्य व्यक्ति होते, तो उनकी राय की उपेक्षा की जा सकती थी। लेकिन कोई एक-आध व्यक्ति अपने मन के सन्तोष के लिए यह मानने से भले ही इनकार करे, लेकिन यह हमें मानना होगा; और कुछ लोगों को यह कितना ही असुविधाजनक और अप्रिय क्यों न लगे, फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि आज भी कश्मीर में श्री शेख अब्दुल्ला बहुत महत्त्व का स्थान रखते हैं। और कश्मीर-घाटी में तथा अन्य अनेक प्रदेशों में भी शेख अब्दुल्ला के पीछे भारी जनमत खड़ा है। इस परिस्थिति में जबतक कश्मीर के निर्णय में शेख अब्दुल्ला भी भागीदार नहीं होते हैं, तब तक कश्मीर की बहुत बड़ी जनसंख्या यह नहीं मान सकती कि कश्मीर की समस्या का अन्तिम निर्णय हो चुका है।

आप लोगों को स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है, कि सन् १९४७ में कश्मीर राज्य का भारत में विलयन करनेवाला और किसीसे भी अधिक जिम्मेदार व्यक्ति कोई था तो वह शेख मुहम्मद अब्दुल्ला थे। इस सन्दर्भ में एक और ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। स्वतंत्रताके समय, जब अविभक्त भारत के अधिकांश मुसलमान श्री जिन्ना के झण्डे के पीछे चलने लगे और उनके द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का समर्थन करने लगे, तब केवल दो उज्ज्वल अपवाद हिम्मत के साथ अलग खड़े रहे, वे थे—एक, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त, और दूसरा, जम्मू और कश्मीर राज्य। इन दो प्रदेशों की मुस्लिम जनता ने स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र के नारे को लेकर अपना पैर उखड़ने देने से इन्कार किया था। और यह आप स्मरण रखें, कि केवल दो परम धर्मनिष्ठ, उदात्त, और साधु प्रकृति के व्यक्तियों—खान अब्दुल गफार खाँ और शेख अब्दुल्ला—के नेतृत्व के चलते ऐसा हुआ।

विभाजन के बाद और पाकिस्तान के बन चुकने पर, जबकि पाकिस्तान ने आक्रमण किया, तब उसका मुकाबिला करने में और भारत के भूभाग से उन आक्रमकों को भगाने में नेतृत्व करने वाले भी शेख अब्दुल्ला ही थे। उनके वीरतापूर्ण, असाम्प्रदायिक और जागृत नेतृत्व के ही कारण आज भारत के हर नागरिक को अपनी धर्म-निरपेक्षता के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में कश्मीर को प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। अभी हाल की श्रीनगर के इंजीनियरिंग कालेज की घटनाओं के समय भी श्री शेख साहब ने एक बार और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध अपना सुदृढ़ विरोध प्रदर्शित किया।

ये कुछ घटनाएँ तो ऐसी बहुतेरी घटनाओं में से मिसाल के लिए हैं। इन सबसे श्री शेख अब्दुल्ला का नेतृत्व और उनका वास्तविक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

कश्मीर की कोई समस्या अब निपटारे के लिए शेष नहीं है, ऐसा कहनेवालों का ध्यान खींचने के लिए मैं एक और परिस्थिति का उल्लेख करना चाहूँगा जो इस राज्य का एक प्रमुख तथ्य है। वह तथ्य यहाँ की वादियों में दूर-दूर तक और गहरे में जमा हुआ असन्तोष है। इस असन्तोष का एक भाग तो निश्चित

ही वही हैं जो एक-न-एक रूप में सारे देश में व्याप्त है। परन्तु असन्तोष का बहुत बड़ा भाग तो यहीं का अपना है, और वह यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति से उभरा है : विशेषतया श्री शेख अब्दुल्ला की असहमति, स्वस्थ लोकतंत्र के अभाव और राज्य में एक अच्छी सरकार के न होने के कारण। इस राज्य में हाल में चुनाव याचिकाओं के जो फैसले हुए हैं उनसे यहाँ के लोकतंत्र की महत्त्वपूर्ण व्याख्या हो जाती है।

मेरे ख्याल से, जो लोग जोर-शोर से यह दावा किया करते हैं कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, उनको इस स्थायी असन्तोष की गहरी चिन्ता होनी चाहिए। लेकिन दुख की बात है कि इनमें से किसी को वह चिन्ता नहीं है। उनमें से अधिकांश लोग कतराने की नीति में विश्वास करते हैं, और बड़े ही दुखःद ढंग से यह माने हुए हैं कि समय ही सारी समस्याएँ हल कर देगा। उनको यह पता ही नहीं है कि इन इक्कीस वर्षों में समय ने इस विशेष समस्या को हल नहीं किया है। यही अनिर्णय और अवसरवाद का रवैया बना रहा तो, एक और इक्कीस साल का समय भी शायद ही कुछ हल कर पायेगा। लेकिन हाँ, कतराने की वृत्ति को ही बढ़ने दिया जाय और शेख अब्दुल्ला को नजर-अन्दाज ही करते रहें, तो उग्रवाद जरूर उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा और उसका परिणाम क्या होगा, इसका हम-आप अन्दाज नहीं कर सकेंगे।

हाँ, कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी दृष्टि में प्रत्येक समस्या का हल फौजी शक्ति में ही है। उनको इस बात की तनिक भी परवाह नहीं है कि शेख अब्दुल्ला कितने लोकप्रिय हैं और उनके अनुयायी कितने असन्तुष्ट हैं। उनके अनुसार तो, सेना उन सबको ठीक कर देगी। ऐसे प्रतिक्रियावादी और पलायनवादी दृष्टिकोण एक विशेष प्रकार के दिमाग को बहुत अच्छे लगते हैं। परंतु बड़े पैमाने पर सेना का उपयोग करना—और वह भी संसार के ऐसे नाजुक इलाके में—सचमुच बेहद खतरों को न्योता देना है। यह भी एक वास्तविक खतरा है कि कश्मीर में सेना पर निरंतर निर्भर रहने से बहुत सम्भव है कि भारत के अन्य भागों में लोकतंत्र के क्षीण होने की स्थिति आये, साम्प्रदायिक दंगों को प्रोत्साहन मिले, और राष्ट्र के राजनैतिक और आर्थिक शरीर में, उत्तरोत्तर बढ़नेवाला और देह को सड़ानेवाला नासूर हो जाय।

वस्तुस्थिति पर आधारित निर्णय आवश्यक

मैंने कुछ विस्तार से और पूरा खुल कर उन बुनियादी तत्त्वों पर विचार किया जो कश्मीर-समस्या पर मेरे दृष्टिकोण को दिशा देते हैं। उतने ही मुक्तभाव से, अब, इस परिषद् में उपस्थित लोगों की ओर मुखातिब होता हूँ। पिछले वर्षों में भिन्न-भिन्न लोगों ने कई प्रकार के समाधान सुझाये हैं; आत्मनिर्णय का उन सबका अपना-अपना अर्थ रहा है। मैं एक बात पर विशेष बल देना चाहता हूँ कि सुनिश्चित और वस्तुस्थिति पर आधारित निर्णय लेने का यह एक बड़ा अच्छा अवसर है।

इस प्रकार के क्रान्तिकारी युग में, जिसमें हम जी रहे हैं, समय और परिस्थिति बहुत जल्दी गुजरते हैं। ऐसे परिवर्तनों के साथ मेल साधने के लिए शीघ्र-निर्णय करना राजनयिकता की माँग है। कश्मीर की समस्या कोई शास्त्रीय प्रश्न नहीं है जिस पर अनिश्चित काल तक, हवा में हम चर्चा करते रहें, जब कि वहाँ की जनता की सामाजिक और आर्थिक जरूरतें बुरी तरह उपेक्षित होती रहें। यह तो बहुत अंशों में राजनैतिक प्रश्न है; परन्तु राजनीति में पसन्द और नापसन्दगी के लिए बहुत कम गुंजाइश रहती है, क्योंकि उसके साथ परिस्थिति गुथी रहती है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कश्मीर-समस्या पर जब-जब चर्चा उठती है, तब-तब प्रायः आत्मनिर्णय के अधिकार की बात आती है। उस दावे का आधार भारत सरकार की ओर से लार्ड माउन्ट बेटन के द्वारा महाराजा हरिसिंह को लिखे गये पत्र के निम्न शब्द हैं : "ज्यों ही व्यवस्था और कानून स्थापित हो जायेंगे और आक्रमकों को प्रदेश से हटा दिया जायगा, तब लोकमत के आधार पर राज्य के विलयन का प्रश्न तय किया जायगा।" यह भी यहाँ निर्देश कर देना ठीक ही होगा कि आज भी राज्य के काफी बड़े इलाके पर परकीयों का ही कब्जा है। सन् १९६५ में हुआ एक दुःखद संघर्ष इसमें एक और उलझाव बना है और उसका तब तक परिमार्जन नहीं हो सकता, जब तक पाकिस्तान 'युद्ध न करने की संधि' करने से इनकार करता रहेगा।

आपको यह भी बतला दूँ कि १९६८ के संसार की दृष्टि और वृत्ति १९४७ के संसार से अत्यन्त भिन्न है। इन मध्यान्तर के वर्षों में अनेक नयी बातें सामने आयी हैं, जिनकी वजह से कश्मीर समस्या के समाधान से सम्बन्धित मुद्दों का मूल स्वरूप ही जड़मूल से बदल गया है। इस बदली हुई भूमिका में कश्मीर की जनता की आज की माँगों को ध्यान में रखते हुए आत्मनिर्णय के अधिकार की ताजी व्याख्या की जरूरत है।

आत्मनिर्णय के अधिकार का एक व्यापक अर्थ यह तो है ही, कि प्रत्येक समाज को अपनी जीवनपद्धति और अपनी संस्थाओं का स्वरूप और स्वभाव तय करने का अधिकार है। परन्तु यह एक अत्यन्त उलझी हुई बात है। और आजकल की राष्ट्र-सत्ता के सन्दर्भ में तो उलझनें और भी बढ़ गयी हैं। मैं कोई राष्ट्र सत्ता का हिमायती नहीं हूँ, बल्कि वास्तव में मैं उसे असामयिक और अतीतकालिक विचार मानता हूँ। लेकिन वह आज कायम है, और यह दीखता है कि, उसके साथ प्रबलतम भावना जुड़ी हुई है, जो मनुष्य को सक्रिय और संगठित करती है। वह भावना धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति, विचारधारा—भले वह साम्यवादी ही क्यों न हो—आदि सब सीमाओं को पार कर जाती है।

राष्ट्र-सत्ता के संदर्भ में 'जनता' (पीपुल) की व्याख्या करना और उसकी भौगोलिक सीमा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। क्या सभी कश्मीरियों को 'एक जनता' की संज्ञा दे सकते हैं? तब फिर डोगराओं का क्या होगा, लद्दाखियों का क्या होगा? रेखा कहाँ खींचे? आप संसार में चारों ओर निगाह दौड़ायें, और स्वयं देखें कि ये मौजूदा राष्ट्र-सत्ताएँ, चाहे वे जिस किसी भी संयोग या घटना के कारण स्थापित हुई हों, किस प्रकार अपने ही उन लोगों के साथ क्रुद्ध कुत्त की तरह भिड़ती हैं, जो अलग होना या

www.vinoba.in

आत्मनिर्णय के अधिकार का अमल करना चाहते हैं।

www.vinoba.in

यह कठोर सत्य है, जिसकी ओर हमें पर्याप्त ध्यान देना होगा। किसी को प्रिय हो या न हो, भारत की राष्ट्र-सत्ता भी विभाजन की दुःखद घटना और संयोग की ही रचना है, और इसका भौगोलिक सीमांकन हुआ है। चाहे जो भी तर्क पेश किये जायं, पाकिस्तान या और भी किसी राष्ट्र-सत्ता की तरह भारत भी अब इस बात के लिए तैयार नहीं है कि अपने देश का कोई भी भू-भाग किसी दूसरी राष्ट्र-सत्ता को स्वेच्छया और शान्तिपूर्वक सौंप दे। इस तथ्य को पूर्णतः स्वीकार करना चाहिए।

निःसन्देह आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के लिए सैनिक-शक्ति का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन किसी भी राष्ट्र-सत्ता का कोई भी भाग इस माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता और न ही उसे लम्बे अर्से तक कायम रख सकता है, जब तक कि उसको किन्हीं अन्य शक्तिशाली राष्ट्र-सत्ताओं द्वारा—उनकी अपनी स्वार्थ सिद्धि की नीयत से—पूरी मदद नहीं मिलती। कुछ भी हो, ऐसी सम्भावना पर यहाँ विचार करना असंगत होगा, क्योंकि मैं नहीं समझता कि यहाँ कोई एक भी व्यक्ति होगा जो सैनिक अथवा हिंसक समाधान का हिमायती हो।

दूसरी अन्य बातों पर भी ध्यान देना होगा। **जम्मू, कश्मीर और लद्दाख—इन तीनों इलाकों की जनता का भाग्य-निर्णय सैकड़ों वर्षों पूर्व ही हो चुका था, प्रमुखतः उनके अपने हित के आधार पर नहीं, बल्कि इस कारण कि जारशाही रूस, चीन और ब्रिटेन इन तीन साम्राज्यों के बीच यह राज्य स्थित था।** पिछली शताब्दी की पुरानी प्रतिस्पर्धाएँ तो गायब हो गयीं, परन्तु आज के संसार में हितों का विरोध अपना चोला बदल कर मौजूद है, और उसकी क्षमता पहले से अधिक विनाशक है। संयुक्तराष्ट्र संघ की घोषणा के उदात्त ध्येयों और सिद्धान्तों के बावजूद; आज छोटे-छोटे राष्ट्र बड़े राष्ट्रों की सत्ता की राजनीति के खेल के असहाय मुहरे भर रह गये हैं।

यह सब अप्रिय तथ्य हैं जिनसे हम पलायन नहीं कर सकते; और आप के एक मित्र और हितैषी के नाते मुझे आपसे वह सत्य कहना ही चाहिए, जैसा कि मैं देखता हूँ। इस परिषद् को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि १९६५ के संघर्ष के बाद, कोई भी भारत की सरकार ऐसा कोई समाधान स्वीकार नहीं कर सकती, जो कश्मीर को भारत से बाहर रखने को कहे। अथवा, दूसरे शब्दों में, विधायक शब्दों में कहना हो तो कहना चाहिए कि समस्या का समाधान भारत संघ के चौखटे के अन्दर ही सोचना चाहिए। मेरा यह वक्तव्य सुनकर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि मैं यह पहली बार कह रहा हूँ, सो बात नहीं है। जैसाकि आपमें से कुछ लोग तो अवश्य ही यह जानते होंगे कि देश के और भी उन कई लोगों का यही दृष्टिकोण है, जो पिछले अनेक वर्षों से कश्मीर-समस्या का एक मान्य समाधान निकालने के लिए अनुकूल जनमत तैयार करने का प्रयत्न करते रहे हैं।

ये वे अनिवार्य सीमाएँ हैं जो परिस्थिति वश हम पर आ पड़ी हैं, जिनका उल्लेख मैंने प्रारम्भ में किया था। आप लोगों की राजनयिकता का तकाजा यह है कि आपको अपनी नीति और कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए जो इन परिस्थितिगत तथ्यों के अनुरूप हो। उन्हें नजर-अन्दाज करने का अर्थ है तनाव की वृद्धि; जिसके परिणाम स्वरूप, जहाँ तक आपकी जनताका सम्बन्ध है, निराशा, अनिश्चय और परीशानी बढ़ेगी।

इस विवेचन से अनेक प्रश्न खड़े होते हैं। उनमें से कुछ प्रश्नों पर विचार कर्ँ। मैं जानता हूँ कि यहाँ की जनता के अपने भविष्य का निर्णय करने में शेख साहब और उनके साथी आत्मनिर्णय के अधिकार पर बल देते रहे हैं। जिन बातों से इस अधिकार को बल मिलता है उनका संकेत मैं कर चुका हूँ। हाँ, यह तर्क पेश किया जा सकता है कि (अ) इन्हें स्वीकार करने या न करने का अधिकार जनता को प्राप्त है; (आ) और अगर है, तो उन मर्यादाओं के भीतर रहकर राजनैतिक निपटारे का स्वरूप क्या होगा?

आज आपके सामने जो प्रमुख प्रश्न मैं प्रस्तुत करना चाहता हूँ, वह यह है कि कोई भी जनता ऐसे उलझे हुए और गम्भीर प्रश्नों का समाधान उनके अपने नेताओं के स्पष्ट और अदुविधापूर्ण परामर्श के बिना कैसे कर पायेगी? मैं तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ, और अपनी पूरी क्षमताभर जोर देकर आप लोगों से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यही वह अवसर है जिसके प्रति आपको कृतज्ञ होना है, क्योंकि आपको अपना निश्चय करने का तथा इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी जनता को अदुविधापूर्ण सलाह देने का मौका मिला है। मैं समझता हूँ कि यहाँ उपस्थित लोगों के लिए जनता के बीच में पहुँचना और उन्हें यह समझाना कठिन नहीं होगा कि यहाँ जो निर्णय हुए हैं वे सर्वोत्तम समाधान के उपाय हैं, जो प्रस्तुत परिस्थिति में सम्भव हो सकते थे, और जो निश्चित ही सुख-शांति और इज्जत प्रदान करनेवाले हैं। यदि इस परिषद् को राजनैतिक वाद-विवाद मात्र ही बन कर नहीं रह जाना है, बल्कि प्रस्तुत जटिल समस्या का व्यवहारिक हल ढूँढ़ने का हार्दिक और विधायक प्रयत्न सिद्ध होना है, तो मेरा दृढ़ मत है कि यह एक सर्वोत्तम बुद्धिमत्ता का मार्ग होगा।

मेरे सुझाव से दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मेरे सुझावों के अनुसार किये जाने वाले निर्णय के प्रति पाकिस्तान की क्या प्रतिक्रिया होगी? जब तक पाकिस्तान यहाँ की परिस्थित के विषय में, कम-से-कम मौनपूर्वक शांत नहीं रहता, तब तक इस राज्य की शांति और सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं हो सकती। यह सच है। इसलिए हम देखें कि पाकिस्तान की क्या सम्भाव्य प्रतिक्रियां हो सकती है।

पाकिस्तान की जाहिर-नीति हमेशा से यही रही है कि इस राज्य के भविष्य का निर्णय यहाँ की जनता को ही करना चाहिए। इसलिए अगर यहाँ आप लोग एक निर्णय लें और उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए आप जनता को समझायें, और मुझे कोई शंका नहीं कि यह करने के लिए आप पूरी तरह समर्थ हैं, तब पाकिस्तान के लिए शिकायत का कोई मौका या दुःख का कोई कारण नहीं रह जायगा। विश्व का

www.vinoba.in

लोकमत भी ऐसे निर्णय का समर्थक ही होगा जो कश्मीरी जनता को स्वीकार्य हो। और विश्वमत पाकिस्तान को भी उसे स्वीकार करने या उससे संतोष करने की नीति अपनाने को विवश करेगा। यह होता है तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के सम्बन्धों के इतिहास में भी एक नया और सुखद अध्याय प्रारम्भ होगा।

अन्तिम प्रश्न, बल्कि सबसे अधिक महत्त्व का प्रश्न यह है कि मेरे सुझावों के विषय में भारत सरकार की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है? यद्यपि मैं भारत सरकार की ओर से बोल नहीं सकता हूँ, परन्तु आप लोग जो निर्णय करेंगे उससे आपके नेताओं और भारत सरकार के बीच सफल वार्ता हो सकने की भूमिका स्पष्ट हो जायगी, इसमें मुझे शंका नहीं है। ऐसी स्थिति में यहाँ के दूसरे नेता भी, जो इस परिषद् से बाहर रह गये हैं, आपके साथ मिल सकते हैं। मुझे लगता है कि तब निश्चित ही नया सूर्योदय होगा।

भारत-संघ के अन्दर इस राज्य के क्या स्थान-मान होंगे, और उन स्थान-मानों में कभी एक पक्षीय निर्णय या परिवर्तन न करने की गारण्टी क्या होगी, आदि प्रश्नों पर चर्चा करनी रह जाती है। परन्तु ऐसी चर्चा का स्थान यह नहीं है; आगे जाकर भारत सरकार के प्रतिनिधियों के साथ यह सब करना होगा। मुझे यह भी मालूम है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो किसी एक राज्य को विशेष स्थान देने के विरुद्ध हैं। लेकिन मुझे शंका है कि भारत की इस बदलती हुई परिस्थिति में ऐसी दृष्टि कब तक निभ सकेगी। ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुरूप सामान्यतया कई सुधार हमें करने पड़ेंगे। वास्तव में आज भी ऐसे सुधार हो ही रहे हैं।

राज्यों की ओर से अधिकाधिक स्वायत्तता की माँग का दबाव बढ़ रहा है। ऐसी माँगों को राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा समझना भूल होगी। इसके विपरीत सारे देश के लिए कोई जड़वत एकरूपता ऊपर से लादने का प्रयास करना तनाव का कारण बन सकता है और उससे विघटन के बीज बढ़ सकते हैं। सन् १९६७ के चुनावों के परिणामस्वरूप देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन आया है, उसको देखते हुए केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों पर सर्वथा नयी दृष्टि से विचार करना आवश्यक हो गया है। भारत जैसे इतने बड़े राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता तभी बनी रह सकेगी जब हम क्षेत्रीय भावनाओं और हितों को ठीक से समझने का वातावरण बनाये रखें और परस्पर एक दूसरे को सहन करने की वृत्ति रखें। जब तक केन्द्र का पूरा शासन एक ही पार्टी के हाथ में था, और राज्यों में भी वही पार्टी सत्तारूढ़ थी, तब तक केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का प्रश्न इतना अधिक महत्त्व का नहीं दीखता था। सन् १९६७ के चुनाव के बाद कई राज्यों में राजनैतिक दलों द्वारा सत्ता के लिए हास्यास्पद कार्य हुए हैं। जिनकी विस्तृत चर्चा का न यह स्थान है न अवसर है। परन्तु यहाँ इतना समझ लेना अप्रासंगिक न होगा कि कश्मीर ही एक राज्य नहीं है जो अधिकाधिक स्वायत्तता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

प्रिय मित्रो, ये ही वे सीधे-सादे शब्द हैं जिन्हें आप के सम्मुख प्रस्तुत करने की इच्छा प्रारंभ में मैंने व्यक्त की थी। एक बार फिर मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि ये बातें मैंने अपने अन्तस्तल से कही हैं, और इनका हेतु आपको किसी व्यावहारिक और समझदारी का निर्णय लेने में सहायता पहुँचाना ही है। आज देश की निगाहें आपकी ओर लगी हैं और प्रत्येक व्यक्ति आशा कर रहा है कि आप लोगों का निर्णय अधिक सुखी भविष्य की ओर जाने का नया मोड़ साबित होगा।

यह गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष का आरम्भ है, इसलिए उस व्यक्ति के प्रति—जिसने हमें अपने स्वतन्त्रता-संग्राम में नेतृत्व दिया, अपनी श्रद्धांजलि के रूप में अपने विचारों को मोड़ें, तो यह अत्यन्त उचित ही होगा। विभाजन के कारण उन्हें बड़ा सदमा पहुँचा था। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वह अनिवार्य हो गया है, क्योंकि उनके साथी स्वतन्त्रता की कीमत चुकाना चाहते हैं, तो वे इस आशा पर रहने लगे कि यह विभाजन दो मित्रों के विभाजन जैसा रहेगा और सन्धिपत्र के द्वारा दोनों अपने पारस्परिक सौहार्द और सौजन्य युक्त सम्बन्धों के प्रति आश्वस्त रहेंगे। दुर्भाग्य से वे विभाजन के बाद अपनी उस आशा को पूरी होते हुए देखने के लिए अधिक समय तक जीवित नहीं रहे।

मेरी हार्दिक कामना है कि यह परिषद् उस प्रयास को फिर से ताजा करने की दृष्टि से न केवल सम्भवनीय, बल्कि कार्यकारी सुझाव प्रस्तुत करेगी। संसार में आज अनेक स्थान विस्फोटक खतरों और दुःखों का केन्द्र बने हुए हैं। यदि आप लोगों के निर्णय इस समूचे क्षेत्र में, जिसे हिमालय के दक्षिण का उपखण्ड कहा गया है, शान्ति और सद्भावना की वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं, तो वह महात्मा गांधी की कल्पना के विश्व की ओर बढ़ने का आपका एक बहुत बड़ा कदम होगा।

यह एक सुअवसर आपको प्राप्त हुआ है जिसमें आप दूर-दृष्टि से काम ले सकते हैं और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस अवसर के लिए उपयुक्त हिम्मत और समझदारी दे। (मूल अंग्रेजी से)

श्रीनगर
१०-१०-'६८

टीकमगढ़-जिलादान-समारोह

आगामी ६ नवम्बर, '६८ को टीकमगढ़ में टीकमगढ़-जिलादान समारोह आयोजित किया जा रहा है, जिसमें टीकमगढ़ जिले के ग्रामदानी गाँवों के हजारों किसान भाई-बहन भाग लेंगे। इस अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण भी उपस्थित रहेंगे, जिन्हें जिलादान-समर्पण करते हुए टीकमगढ़-जिलादान की विधिवत् घोषणा की जायेगी।

दक्षिण-पूर्व एशिया में गांधी सर्वोदय साहित्य-प्रचार

गांधी-शताब्दी के अन्तर्गत गांधी सर्वोदय साहित्य प्रचार दक्षिण-पूर्व एशिया में करने की दृष्टि से सर्वश्री जसवन्त राय, वसन्त व्यास, कृष्णमूर्ति, डा० शकुन्तला देशपांडे और श्रीमती हेमलता मेहता, शिवगुरुनाथन् की एक टोली २१ अक्तूबर से निकल रही है। इनकी यात्रा सिंगापुर, मलाया, थाईलैंड, कम्बोडिया, द० वियतनाम, फिलीपीन्स, बोर्नियो, इंडोनेशिया में २१ अक्तूबर '६८ से १ जनवरी '६९ तक होगी।

www.vinoba.in

बिहारदान : प्रगति का लेखा-जोखा

"२ अक्तूबर '६८ तक बिहारदान" की घोषणा के साथ ही ग्रामदान के नये आयाम प्रकट हुए। देशभर में इस आन्दोलन की ओर देखने का एक नया कोण बना। २ अक्तूबर '६८ बीत गया। यह सहज ही है कि लोग जानना चाहें—'बिहारदान' का क्या हुआ? लीजिये प्रस्तुत है बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी के मंत्री श्री निर्मल चन्द्र द्वारा बिहार-दान आन्दोलन की प्रगति समीक्षा :

बिहार को बाबा का जिस प्रकार का स्नेह मिला उसकी तुलना में बिहार में जो सम्भव हुआ है, वह कम ही है। श्री जयप्रकाशजी कभी-कभी विनोद में कहते हैं—'यदि बाबा कह दें तो बिहार के सभी कार्यकर्ता सिर के बल चलने लगें।" वास्तव में यदि ऐसा होता, इस प्रकार की समर्पण-बुद्धि होती, तो काम और भी तेज होता। सन्त होते हुए बाबा की व्यावहारिक बुद्धि एकनिष्ट रही, लेकिन हमारे सामने समय-समय पर तात्कालिक उग्र समस्याएँ, तूफान के साथ-साथ निर्माण की चिन्ता, तूफान में काम कच्चा होने की आशंका, आदि प्रश्न आते रहे।

२ अक्तूबर तक बिहारदान का संकल्प था लेकिन अब तक सिर्फ उत्तर-बिहार का दान हुआ है। बिहार के कुल ५८७ प्रखण्डों में से दक्षिण-बिहार के ३२४ प्रखण्ड बच रहे हैं। २६३ प्रखण्डदान हो चुके हैं। यानी ४४ प्रतिशत संकल्प सिद्ध हुआ है। यह स्पष्ट है कि हमारी अपनी शक्ति के किसी गणित में यह नहीं बैठता था कि २ अक्तूबर '६८ तक बिहारदान हो जायगा। संकल्प लिया गया, उद्घोष किया गया, पर मन की आशंका मिटी नहीं। अब लगता है कि बाबा को जितने स्पष्ट रूप से यह सम्भव मालूम होता था, उस प्रकार से हम लोगों के मन में आ जाता तो २ अक्तूबर '६८ तक बिहारदान हो जाना सम्भव था। इस कारण यह सिद्ध है कि जो भी कमी रही वह हम कार्यकर्ताओं की ग्रस्तता, व्यस्तता, कार्य-अकुशलता एवं सुस्ती के कारण ही।

ऊँचे लक्ष्य का लाभ

हमारा संकल्प जितना ऊँचा गया, कार्य उतना ही सरल सिद्ध हुआ। बिहारदान के संकल्प से जिलादान सुलभ हो गया। बड़ी शब्द-शक्ति का जादू की तरह मनोवैज्ञानिक असर हुआ। ग्रामदान में टोले-टोले को समझाना पड़ता था। एक गाँव दूसरे गाँव की प्रतीक्षा करता था। श्री राममूर्ति भाई ने खैरा और श्री वैद्यनाथ बाबू ने मनिहारी में प्रखण्डदान की प्रथम कोशिश की थी। पर उन प्रखण्डों को लगा कि हमें ही पहले क्यों चुना गया? दरभंगा ने जिलादान का एक साथ प्रयत्न किया तो प्रखण्डदान सुलभ हो गया। चम्पारण के ३६ प्रखण्डों का दान ४५-५० दिनों में सम्भव हो गया। बड़ी बात ही लोगों को झकझोरती है!

विहारदान में सबसे बड़ी शक्ति खादी कार्यकर्ताओं की लगी है। वास्तव में रचनात्मक संस्थाओं में शक्ति भी खादी संस्थाओं की ही है— वह भी मुख्य रूपसे बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ की। खादी कार्यकर्ता पूरी शक्ति से लग जायँ, तो शेष ११ जिले का काम तीन-चार माह में पूरा हो जाय। लेकिन हम सब खादी संस्थाओं की स्थिति से पूर्ण परिचित हैं—कमीशन की पूँजी, एक-एक पैसे का हिसाब, घाटे में डूब जाने की आशंका, आदि हमेशा सिर पर सवार रहती है। लेकिन जब भी थोड़ी फुर्सत मिली, टिड्डी दल की तरह टूट पड़े, और 'वाटरलू' भी फतह कर दिया।

राजनैतिक पक्षों का समर्थन

एलवाल की पूंजी अपने हाथ में थी ही, बिहार के नेताओं का ता० १७-१८ दिसम्बर, '६३ को सदाकत आश्रम में आन्दोलन को नैतिक समर्थन प्राप्त हो गया। ता० ४ फरवरी, '६८ को राजगृह में बिहारदान के कार्यक्रम को स्वीकार किया। यह सही है कि उनकी राजनैतिक व्यस्तता के कारण इस काम के लिए समय नहीं मिलता है। पर उनके इस निर्णय के कारण गाँव में बिखरे राजनैतिक कार्यकर्ताओं से मदद लेने में सुविधा हो जाती है। इतने बड़े काम में क्षेत्रीय कार्यकर्ता पीछे नहीं पड़ना चाहते हैं। कार्यकर्ताओं के कंधे पर चलनेवाले नेता को चाहे इसकी उतनी चिन्ता न हो।

सरकार की अनुकूलता

स्वर्गीय श्रीबाबू के समय से ही सरकार प्रायः अनुकूल रही। इस अनुकूलता की जड़ में स्वयं बाबा तथा हमारे नेताओं की पक्ष-निरपेक्षता एवं उनकी निरहंकार सेवा-भावना है। कांग्रेस से लेकर संविद, शोषित तथा राष्ट्रपति शासन तक कोई प्रतिकूलता नजर नहीं आयी। सरकारी अधिकारियों के मन में हमारी सफलता का उतना बड़ा असर नहीं है, पर हमारे उद्देश्य की पवित्रता में उनकी श्रद्धा है। देश की वर्तमान परिस्थिति एवं कानून की विफलता के कारण विकल्प की जिज्ञासा है। सरकारी अधिनियम, नियम एवं आदेश के कारण हमारी अनुकूलता बढ़ती है। मदद भी मिल जाती है। बिहार में ग्रामदान का अध्यादेश २ अक्तूबर, '६५ को हुआ। बाद में यह अधिनियम बन गया। इसकी मदद से मुख्य सचिव ने परिपत्र प्रसारित कर जिला-स्तर के सारे विभागों को इस अधिनियम की लक्ष्यपूर्ति का आदेश दिया। जगह-जगह पर कमिश्नर, कलक्टर, शिक्षा-पदाधिकारी, आदि ने अपने अधीनस्त लोगों को इस काम में लगने का सीधा आदेश दिया। जहाँ इसके समान्तर में अपने कार्यकर्ताओं की शक्ति खड़ी रही, काम काफी वेग से हुआ है। चम्पारण तथा सारण का उदाहरण हमारे सामने है।

पंचायत तथा शिक्षण संस्थाएँ

पंचायत तथा शिक्षण-संस्थाओं का असर अपने नीचे के संगठन पर नहीं है, पर ये गाँव-गाँव में व्याप्त हैं। पक्षों के निर्णय के समान ही इनके निर्णय ने भी अनुकूलता पैदा की। जगह-जगह इनसे पुरजोर सहायता मिली है।

संयोजन-नियोजन

तूफान हमारे संयोजन-नियोजन से परे का प्रवाह है। बिहार ग्रामदान प्राप्ति संयोजन

समिति तूफान के आमंत्रण के समय से ही काम कर रही है। जिलों में सर्वोदय-मंडल तथा ग्रामदान प्राप्ति समितियाँ बनी हैं। सब लोग संयोजन में लगे हैं, पर जो प्रत्यक्ष परिणाम आता है, वह इनकी पकड़ से बाहर है। यों सब मिलाकर संयोजन का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष असर होता है। संस्था, सरकार, पंचायत, पच सबको प्रेरित कर इस ओर मुखातिब करने का श्रेय संयोजन को है, पर इनसे काम लेने का चमत्कार तो बस बाबा के पास है।

आर्थिक आधार

दिसम्बर '६६ तक ४,६३,००० के लगभग चंदा थैली से जमा हुआ था। पड़ाव व्यवस्था आदि का छिटपुट चंदा अलग है। इसके बाद २,००,००० रुपया केन्द्रीय गांधी-निधि से अनुदान प्राप्त हुआ। पुन: करीब २,५०,००० रुपये चंदे की रकम आयी। बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ एवं अन्य खादी संस्थाओं के सम्पत्तिदान की रकम—सब मिलाकर आज तक करीब ६,००,००० रुपया हुई होगी। इधर सरकार की ओर से फार्म मिलने लगे हैं। मोटर-खर्च आदि जोड़कर यह सहायता रुपये में १,००,००० के करीब मानी जा सकती है। कार्यकर्ताओं की मदद इससे अलग है। इस तरह अब तक हुए मोट करीब १६,००,००० के नकद खर्च में से केन्द्रीय निधि का खर्च ३,००,००० के आसपास आता है। शेष १३,००,००० में से ३,००,००० बड़े दाताओं का दान है। शेष सारी रकम चंदे से या कार्यकर्ताओं के सम्पत्तिदान से प्राप्त हुई है।

प्राप्ति समिति ने १ रुपये से १०० रुपये तक के कूपन छपवाये हैं। इसीके माध्यम से चंदा वसूल होता है। एकमात्र जयप्रकाश बाबू के प्रयास से बड़े दान मिल पाते हैं। कुछ मदद राजनेताओं से मिली है।

प्रचार

प्रान्त, जिला तथा प्रखण्ड के स्तर के शिविर होते रहे हैं। कुछ शिक्षक, पंचायत के नेता, वकील आदि के भी शिविर हुए। लेकिन यह सब बिहारदान के लिए जितना अपेक्षित था, उस अनुपात में कम ही हुआ। सबसे अधिक 'गूँज' स्वयं बिहारदान की शब्द-शक्ति से पैदा हुई। थोड़ी जगह ही सही, पर दैनिक अखबारों में भी इसके समाचार को स्थान मिलता गया है। समय-समय पर हमारे कार्यक्रम एवं उपलब्धि का रेडियो से भी प्रसारण हुआ है।

प्रवाह की प्रेरणा

प्रश्न आता है कि कौन-सी प्रेरणा है जो शत्-शत् लोगों को विचार-प्रवाह में खींचती चली जा रही है? सुना—ग्रामदान विचार निरपेक्ष होता है। यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रश्न है। क्या गाँव के गाँव बिना समझे-बूझे हस्ताक्षर करते चले जा रहे हैं? एक व्यक्ति के साथ यदि तर्क-वितर्क प्रारम्भ होता है, तो पूरा दिन गुजर जाता है। श्री राममूर्ति भाई ने एक प्रसंग की चर्चा की। एक पढ़ा-लिखा धनी युवक, दो पुस्त से राजनीति में आमूलचूल घुटा हुआ, चार घण्टे की चर्चा के बाद राममूर्ति जी

खादी और ग्रामोद्योग राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं

इनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी के लिए

पढ़िये

खादी ग्रामोद्योग (मासिक)

प्रकाशन का चौदहवाँ वर्ष।

विश्वस्त जानकारी के आधार पर ग्राम विकास की समस्याओं और सम्भाव्यताओं पर चर्चा करनेवाली पत्रिका। खादी और ग्रामोद्योग के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगीकरण की सम्भावनाओं तथा शहरीकरण के प्रसार पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।

ग्रामीण धंधों के उत्पादनों में उन्नत माध्यमिक तकनालाजी के संयोजन व अनुसंधान-कार्यों की जानकारी देनेवाली मासिक पत्रिका।

वार्षिक शुल्क : २ रुपये ५० पैसे
एक अंक : २५ पैसे

जागृति (पाक्षिक)

(संपादक—जगदीश नारायण वर्मा)

हिन्दी और अंग्रेजी में समानांतर प्रकाशित

प्रकाशन का बारहवाँ वर्ष।

खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रमों सम्बन्धी ताजे समाचार तथा ग्रामीण योजनाओं की प्रगति का मौलिक विवरण देनेवाला समाचार पाक्षिक। ग्राम-विकास की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करनेवाला समाचार-पत्र।

गाँवों में उन्नति से सम्बन्धित विषयों पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।

वार्षिक शुल्क : ४ रुपये
एक प्रति : २० पैसे

अंक-प्राप्ति के लिए लिखें

"प्रचार निर्देशालय"

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन, 'ग्रामोदय'
इर्ला रोड, विलेपार्ले (पश्चिम),
बम्बई—५६ एएस

बिना समाधान दिलाये वापस जा रहे थे। दरवाजे की अन्तिम सीढ़ी से चाय के लिए वापस बुलाये गये। चाय की प्रतीक्षा में बैठे थे कि युवक ने घोषणापत्र माँगकर हस्ताक्षर कर दिया। निवेदन के बावजूद पढ़ा नहीं कि इनकी शर्तें क्या हैं। दूसरा प्रसंग बेगूसराय के एक गाँव का है। मुखिया ने अपने टोले का हस्ताक्षर करा दिया। गाँव के दूसरे टोले के नेता के साथ इनका वर्षों से झगड़ा था। मामला हाईकोर्ट तक गया था। आना-जाना बोल-चाल बन्द। ग्रामदान के कार्यकर्ताओं के अनुरोध पर लाचार होकर पाँचवें वर्ष उनके दरवाजे पर पहुँचे। दैवयोग से सत्यनारायण भगवान की कथा हो रही थी। गृहपति गद्‌गद् हो गया। पूछा—"किस काम से आना हुआ।" उत्तर मिला—"ग्रामदान।" दूसरे ही क्षण घोषणापत्र माँगकर स्वयं हस्ताक्षर कर दिया एवं अपने पास-पड़ोस के लोगों से हस्ताक्षर करवाया। कोई प्रश्न नहीं, शंका नहीं। शर्तें पढ़ी नहीं। तीसरा उदाहरण एक भूतपूर्व एम० एल० ए० का है। हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातोकत्तर उपाधि प्राप्त। मुझे स्मरण है कि असेम्बली की उनकी ग्रासदान बिल पर की गयी तीखी आलोचना। उस समय भी उन्होंने बिल का अध्ययन नहीं किया था, यह उनके तर्क से स्पष्ट था। ११ सितम्बर, '६८ को मुजफ्फरपुर स्टेशन पर मिले। हर्ष में कहा—'हमारा जिला दान हो गया।' अपने मन में उनके मुस्कान से व्यंग की आशंका हो रही थी। पूछा—'क्या आपने हस्ताक्षर कर दिया?' 'हाँ, मैंने भी किया तथा दो-तीन दिन घूमकर अपने क्षेत्र में भी हस्ताक्षर करवाया, पर यह समझ में नहीं आता कि गरीब-अमीर बराबर कैसे हो जायेंगे? क्या लोग अपनी सब जमीन बाँट देंगे।' परमात्मा जाने क्या उन्होंने स्वयं समझा और क्या समझाया?

कानून चाहे जो कहता हो, घोषणापत्र की शर्तें चाहे जो हों, पर हवा में बात यह है कि 'ग्रामदान' विषमता को दूर करने का रास्ता है। इस सत्य की आकांक्षा सबकी है। व्यावहारिक स्वरूप क्या होगा, यह पता नहीं? पर इस सत्य की लोक-आकांक्षा है इस कारण इस बड़े पैमाने पर हस्ताक्षर कर लोक-मानस की सुषुप्त भावना अभिव्यक्त हो रही है। यह तर्क से परे, विचार की पकड़ से बाहर, सत्यनिष्ट हृदय का सहज-स्फूर्त समर्थन है।

ग्रामदान की सरकारी घोषणा

अब तक की प्राप्त सूचना के अनुसार १२०१ गाँवों के ग्रामदान का कागज दाखिल हुआ। इनमें से ७९४ गाँवों को नोटिस दी गयी। ६७२ गाँव के व्यक्तिगत घोषणापत्रों की सम्पुष्टि हो गयी। नोटिस दिये गये ७९४ गाँवों में से शेष १२४ गाँवों में से करीब ६० गाँवों की आपत्तियाँ आयी हैं। शेष का एक माह पूरा होना बाकी है। ६७२ गाँवों में से १७६ भूमिहीनों के गाँव हैं। इनका ग्रामदान हमारे आज के कानून से नहीं हो सकता। अधिनियम का संशोधन नीतितः मान्य हो गया है। संशोधन होने पर विचार होगा। ३४८ गाँवों का सर्वेक्षण हो रहा है। १४८ गाँवों का सर्वेक्षण हुआ जिनमें ५० गाँव घोषणा के योग्य निकले। इनकी घोषणा के लिए नोटिस दी गयी है। नोटिस के एक महीने बाद गजट होता है। इनमें से १८ गाँवों का गजट ११ सितम्बर, '६८ को हो गया। यह सरकारी घोषणा की पहली किस्त है। जो आपत्तियाँ आयी हैं उनमें से यह आपत्ति एक भी नहीं है कि हमारा हस्ताक्षर नहीं है। गलत आश्वासन एवं भ्रम की बात कही गयी है। जिस गाँव की आपत्ति आती है, पूरा का-पूरा गाँव आपत्ति करता है। पढ़े लिखे हस्ताक्षर करनेवाले लोग भी इसमें शामिल हैं। पता लगता है कि वे बहकाने पर अब विमुख हो रहे हैं। जो ९८ गाँव, जनसंख्या या भूमि की प्रतिशत नहीं पूरी होने के कारण छूटे हैं, कार्यकर्ताओं के थोड़े प्रयास में वह पूरी कमी हो सकती है।

—निर्मल चन्द्र

www.vinoba.in

पुस्तक-परिचय

तूफान की पुकार

लेखक : सुरेश राम

प्रकाशक : सर्वोदय प्रकाशन समिति, कदम कुआँ, पटना—३

पृष्ठ : १४८, मूल्य : रु० ३—००

ग्रामदान आर्थिक और सामाजिक जीवन को बदलने की योजना है ताकि आर्थिक विषमता घटे और सामाजिक विषमता मिटे, आध्यात्मिक मूल्य पनपें, और परस्पर सहकार बढ़े, और यह तुरन्त होना चाहिए। जो इसकी तीव्रता महसूस करेंगे वे इसमें लग जायेंगे और बिना इसको पूरा किये चैन नहीं लेंगे।" श्री सुरेशरामभाई की लिखी यह किताब ग्रामदान के तूफानी वेग का सही दर्शन कराती है।

गोपुरी (वर्धा) के सर्व सेवा संघ के अधिवेशन के बाद सन् १९६५ में ही विनोबा ने ग्रामदान के लिए पदयात्रा का ढंग छोड़ तूफान-यात्रा का पथ पकड़ा और ११ सितम्बर '६५ को बिहार की राजधानी पटना में प्रवेश किया। उनकी इस यात्रा में श्री सुरेशरामभाई भी साथ थे। तूफान-यात्रा की हर गतिविधि के सुरेशरामभाई गवाह रहे हैं, प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं और उसको उन्होंने कागज पर उतारकर रख दिया है।

इस पुस्तक में बिहार की तूफान-यात्रा का इतना सजीव और सटीक वर्णन है कि एक ओर जहाँ पुस्तक में व्यक्तिगत संस्पर्श के द्वारा मानवीय हृदय की कोमलता, मधुरता और विवशता के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामदान-आन्दोलन के मूल में निहित आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक मूल्यों का परिवर्तन तथा निर्माण का स्पष्ट दर्शन होता है। घटनाओं, संवादों और प्रसंगों को लेखक ने अपनी सजीव शैली देकर और भी रोचक बना दिया है।

पढ़ने में जितनी सरल, पचाने में उतनी ही कठिन—यह है इस किताब की मोहकता में भी निर्ममता!

बिहार ने ग्रामदान को अंगीकार कर लिया है, और अब तो जिलादान को पार कर राज्यदान की यात्रा पर आरुढ़ हो चला है। देश की गिरी हालत को बदलने में बिहार ने पहल की है। ग्राम-स्वराज के विचार को अपनाने के लिए यह पुस्तक पाठक के लिए उपयोगी है।

— जमनालाल जैन

आन्दोलन के समाचार

उत्तरप्रदेश में १५ दिनों में ९९४ ग्रामदान

३० सितम्बर तक प्रदेश में कुल ९५५६ ग्रामदान तथा ५० प्रखण्डदान और २ जिलादान पूरे हुए हैं। १५ सितम्बर तक ८५५० ग्रामदान और ४९ प्रखण्डदान हुए थे। इन १५ दिनों में ही प्रदेश के ११ जिलों में ९९४ ग्रामदान और १ प्रखण्डदान प्राप्त हुए। गाजीपुर में १७, फैजाबाद में २५, हरदोई में ३०६, गोरखपुर में १६८, मेरठ में ६६, मुजफ्फरनगर में १५१, फर्रुखाबाद में ३३, चमोली में ९२, टीहरीगढ़वाल में १६, अलमोड़ा में ४० तथा वाराणसी में ७४। फैजाबाद में पूरा बाजार का प्रखण्डदान पूर्ण हो गया है जिसमें सम्मिलित ग्रामदान संख्या ५० हुई। वाराणसी और आजमगढ़ जिले के विद्यापीठ तथा अजमतगढ़ के प्रखण्डों में एक-दो प्रतिशत ग्रामदानों की कमी है वे भी शीघ्र ही पूरे हो जायेंगे।

अभी प्रदेश में वाराणसी जिले में नौगढ़ प्रखण्ड तथा चमोली जिले के नागपुर प्रखण्ड में अभियान चल रहे हैं। शेष प्रदेश के जिलों में कहीं भी अभियान अक्तूबर के पूरे माह तक नहीं चलेंगे। नवम्बर में पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण के अधिकांश जिलों में अभियान चलेंगे। रचनात्मक कार्यकर्ता उस समय खादी-बिक्री के काम से फुरसत पा जायेंगे। नवम्बर में कुछ नये जिलों में जैसे—उन्नाव, प्रतापगढ़, जौनपुर, पौड़ीगढ़वाल, आदि में भी अभियान प्रारम्भ होंगे।

१५ नवम्बर के इर्द-गिर्द प्रदेशीय ग्रामदान प्राप्ति समिति की एक आवश्यक बैठक प्रदेशदान के संयोजन की दृष्टि से कानपुर में करने का निश्चय किया गया है।

—कपिल भाई, संयोजक
उ० प्र० ग्रामदान प्राप्ति समिति

शिक्षकों-विद्यार्थियों की ग्रामदान-यात्रा

औरंगाबाद। सुश्री निर्मला बहन देशपांडे की २ से ६ सितम्बर तक मराठवाड़ा (महाराष्ट्र) में प्रचार-यात्रा हुई। छात्रों की सहायता मिल सके, इस दृष्टि से कालेजों में भी सभाएँ हुईं। परभणी जिले की बसमत तहसील में शिक्षक और विद्यार्थियों की टोलियों ने ९ से १४ सितम्बर तक ग्रामदान-पदयात्राएँ कीं। हरएक टोली के साथ एक कार्यकर्ता रहा। एक क्षेत्र में शिक्षकों की टोली के साथ में भी रहा। दस ग्रामों की सभा में अनुभव किया कि काफी लोग श्रद्धा से विचार सुनने के लिए आते हैं। ८ सितम्बर को एक शिविर भी हुआ, १५ सितम्बर को समारोप हुआ। लगभग ७९ ग्रामों में कार्यकर्ताओं की सभाएँ हुईं। महाराष्ट्रदान की संकल्प-पूर्ति के लिए ग्रामदान का सन्देश गाँव-गाँव पहुचाने की कोशिश जारी है। —अच्युत देशपांडे

बोधगया में सन्त और बुद्धिजीवी सम्मेलन

बोधगया। ५ अक्तूबर से ९ अक्तूबर तक केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के तत्त्वावधान के प्रगतिशील सन्तों, बुद्धिजीवियों और पुराने गांधी परिवार के लोगों के सम्मेलन आचार्य विनोबा भावे के सानिध्य में आयोजित हुए।

प्रबन्ध समिति की बैठक

सर्व सेवा संघ प्रबन्ध समिति की बैठक श्री जयप्रकाशजी के आश्रम सोखोदेवरा में ५ और ६ अक्तूबर को हुई थी। समिति ने निश्चय किया कि हरियाणा, उत्तर-प्रदेश और बिहार राज्यों के मध्यावधि चुनाव में मतदाता-शिक्षण का सक्रिय प्रयास किया जाय। इस काम की जिम्मेदारी जे० पी० ने स्वयं स्वीकार की है। जे० पी० की मदद में आचार्य राममूर्ति इस काम का संयोजन करेंगे।

प्रबन्ध-समिति की अगली बैठक जनवरी '६९ में महाराष्ट्र के सांगली नामक स्थान पर होगी। समिति ने सोखोदेवरा की बैठक में लोक सेवकों के दुनियादी संकल्प-पत्र और संगठन के बारे में आगामी संघ-अधिवेशन में पुनर्विचार करने हेतु कार्यकर्ता साथियों के सुझाव प्राप्त करने का तय किया है। इसी प्रकार अध्यक्ष के चुनाव की पद्धति क्या हो, इस विषय में भी कार्यकर्ताओं के सुझाव आमंत्रित किये गये हैं।

महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल

महाराष्ट्रदान के संकल्प की पूर्ति की दृष्टि से महाराष्ट्र के १४ जिलों की जिम्मेदारी सर्वोदय मंडल के १४ प्रमुख कार्यकर्ताओं ने स्वीकार की। मराठवाड़ा क्षेत्र के पाँच जिलों के लिए सुश्री निर्मला बहन देशपांडे ने समय देने का तय किया। अक्तूबर में चांदा जिले के चिमूर प्रखण्ड में पदयात्रा का आयोजन श्री चंदावार करेंगे। महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल का कार्यालय बम्बई से गोपुरी, वर्धा लाया गया है। मंडल ने शान्ति-सेना समिति, अर्थसमिति, साहित्य-प्रकाशन समिति, प्रसिद्धि समिति, विधायक संस्था-संपर्क समिति आदि समितियाँ बनायी हैं। नये मंडल के मंत्री—वसंत बोम्बटकर, सहमंत्री—श्री शिवशंकर पेंटे और अध्यक्ष—श्री ठाकुरदास बंग चुने गये हैं।

पठनीय मननीय

भूदान तहरीक

उर्दू भाषा में अहिंसक क्रांति की संदेशवाहक पाक्षिक
वार्षिक शुल्क : ४ रुपये

नयी तालीम

शैक्षिक क्रांति की अग्रदूत मासिकी
वार्षिक मूल्य : ६ रु०

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी-१

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे; इस अंक का :३० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित

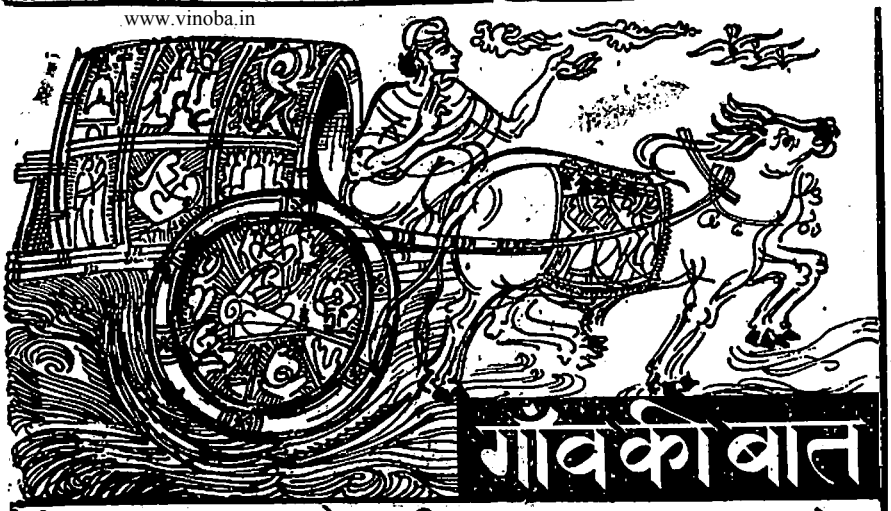

"भूदान-यज्ञ" २१ अक्तूबर '६८ के अंक का परिशिष्ट

www.vinoba.in

गाँव की बात

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम् ।— ऋग्वेद

'इस गाँव में स्वस्थ और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो।'

विनोबा का जय जगत्

इस अंक में

दल का दलदल, पुलिस की छाया, बाजार की माया :

नयी लोकशक्ति का विकास

फसल-चक्र

खादी की इज्जत : पर्दे की प्रतिष्ठा

पति-पत्नी के सम्बन्ध

मिट्टी का बना सुवर्ण-पात्र

काला दिल : गोरा दिल

२१ अक्तूबर, '६८

वर्ष ३, अंक ५] [१८ पैसे

दल का दलदल, पुलिस की छाया, बाजार की माया

रात को हरिहर काका के यहाँ रामायण-कथा-चर्चा के लिए गाँव के बहुत से लोग जुटे थे। हरिहरकाका की दालान पर रामायण-कथा हमेशा से होती आयी है। खुद हरिहर काका खानदानी रामायणी हैं। लोग कहते हैं कि गाने-बजाने का शौक काका के घर के बच्चे माँ के गर्भ से ही लेकर आते हैं। इस बुढ़ापे में भी हरिहरकाका का गला इतना साफ, सुरीला और रोबीला है कि इलाके में उनका कोई जोड़ नहीं। रिमझिम-रिमझिम बारिश के समय जब वह ऊँची आवाज में तुलसी कृत रामायण की चौपाई—'दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई, वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई'—गाते हैं तो सुनने में बड़ा ही अच्छा लगता हैं। मन करता है कि बस, सुनते ही रहें।

लेकिन आज तो जगत ने पहुँचते ही 'मत, मनई और माल' वाली चर्चा छेड़ दी। बलिराम तो उतावले से हो रहे थे यह जानने के लिए कि क्या कोई लखनऊ और दिल्ली का स्वराज गाँव-गाँव तक पहुँचाने का उपाय है? 'ताड़ से गिरे खजूर पर अटके' स्वराज को 'हजूर' लोग कभी मजूर-किस्म के साधारण लोगों तक पहुँचने देंगे?

हरिहर काका ने कहा, "बात यह है भाई कि धोबी तो चाहता ही है कि अधिक-से-अधिक बोझ गधे के ऊपर लद जाय। गधाराम तनिक भी 'ना-नू' तो करने वाले हैं नहीं, करेंगे भी तो डंडे पड़ेंगे, वही हाल हम लोगों का है।"

"क्या कहते हैं काका, क्या हम गधे है?" जगत नारायण को बात अच्छी लगी।

"काका की बात शुरू में कड़वी लगती ही है जगत, और सच तो कुछ-कुछ कड़वा होता ही है।" हरिहर ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "देश की सरकार बनाने के लिए अधिक-से-अधिक 'मत' कहाँ से मिलता है? हजारों-लाखों गाँवों से या सिर्फ कुछ गिने-चुने शहरों?"

"गाँवों से।" बलिराम ने कहा।

"देश की रक्षा के लिए जो सेना बनी है, उसमें भर्ती होने

दिल्ली में अटके स्वराज्य को देश के गाँव-गाँव तक पहुँचाने का एक ही साधन है—ग्रामदान

के लिए 'मनई' अधिक-से-अधिक कहाँ से जाते हैं ?"

www.vinoba.in

"गाँवों से ?" किसी दूसरे ने जवाब दिया।

"...देश के लोगों का, और देश के अधिकतर कल-कारखानों का पेट भरने के लिए 'माल' कहाँ से मिलता है ?"

"गाँवों से।"

"तो जो गाँव देश के जीवन का अधिक-से-अधिक बोझ ढोते हैं, उनकी हालत बद-से-बदतर होती जा रही है, और कुछ थोड़े से लोगों की जिन्दगी दिन-पर-दिन और अधिक रौनकवाली होती जा रही है। सालों से यह सिलसिला चलता जा रहा है। आगे भी इसे बदलने की कोई ठोस कोशिश गाँव की ओर से नहीं होती, तो इसे क्या कहेंगे ? यह 'गधापन' नहीं तो और क्या है ?" हरिहर काका ने अपनी बातें पूरी की।

कई लोगों ने काका की हाँ-में-हाँ मिलाई।

"बात तो पते की कही काका ने, लेकिन इसे सुधारने का कोई उपाय भी है ?" किसी ने पीछे से पूछा।

"जब रोग का पता लग जाता है तो इलाज भी निकल ही आता है। इस 'गधापन' रोग का भी इलाज है, लेकिन अगर हम करना चाहें तो। लेकिन दवा जरा कड़वी होती है, पथ्य परहेज कठिन मालूम होता है, जब तक कि रोगी 'आजिज' न आ गया हो।" काका ने जवाब दिया।

"तो क्या आजिज होने में अभी कोई कोर-कसर रह गयी है काका ? दिन-पर-दिन फटे हाल होते जा रहे हैं। घर में अनाज पैदा होता है तो बाजार के भाव गिर जाते हैं। साल भर की मिहनत की कमाई कौड़ी के मोलबाजार में बेचनी पड़ती है, और बाजार की चीजें खरीदो तो उन चीजों के भाव हमेशा आकाश छूते रहते हैं। और चुनाव के दंगल की तो बात ही क्या कहनी है, उसे हम सब भुगत ही रहे हैं। नेता लोग हमारे ही 'मत' से राजधानियों में कुर्सियाँ तोड़ रहे हैं, और हम यहाँ उनकी सुलगाई आग में जल रहे हैं। जो गाँव कभी एक परिवार की तरह एकमत था, चुनाव के चलते उसमें पाँच-पाँच दल हो गये हैं, कई मुकदमें आज भी चल रहे हैं। चुन जाने के बाद पीछे मुड़ कर गाँव की ओर कौन देखता है ?...और 'मनई' की बात कहते हो ? अभी पिछली ही पाकिस्तानी लड़ाई में तो गाँव के चार-चार पट्ठा जवान...राम कसम, राह चलते अगर कभी उनकी जवान बहुओं की सूनी माँग और बेजान-सी जिन्दगी पर नजर पड़ जाती है, तो कलेजा फट जाता है। काका...भगवान् जाने ये लड़ाइयाँ कब खतम होंगी...'मनई' के 'लहू' से ये राज चलानेवाले जाने कब तक अपनी प्यास बुझाते रहेंगे ?" बलिराम ने लखनऊ में १५ अगस्त के दिन जो मजलिस देखी थी, उसी दिन से उसके पेट में ये बातें पक रही थीं, आज मौका पाते ही उसने उगल दी।

गाँव के उन चार जवानों की याद आते ही कई लोगों की आँखें गीली हो गयीं। कई साल तक 'पचइया' के दिन चारों ने इलाके में कई दंगल जीत कर गाँव की शान बढ़ायी थी।

"बीती, ताहि बिसारिए, आगे की सुधि लेउ !" नन्हकू बोला।

"हाँ भाई, जो बीत गयी सो बीत गयी। कुछ करना-धरना हो तो अब आगे की बात सोचो !" जगत ने कहा !

"बताओ काका; किया क्या जाय ?" किसी ने पूछा।

"गाँव से दल का दलदल, पुलिस की छाया और बाजार की माया को निकाल बाहर करो !" काका ने कहा।

"कैसे ?" एक साथ कई लोगों ने पूछा।

"अगर वोट देना ही है, सरकार बनाने के लिए किसी को चुनकर भेजना ही है, तो क्यों न कोई हमारा अपना आदमी जाय, जो हमारी बात सरकार के सामने रख सके ? हम क्यों 'दलों' के दलदल और उनके वादों के जंगल में फँसे ? आपस की जो कलह हैं, दिन-रात लाठी चलाने की जो नौबत आयी रहती है, और पुलिस किसी-न-किसी बहाने गाँव में पैठती रहती है, हमें थाना-कचहरी, पहुँचाकर घूसते रहने का इंतजाम करती रहती है, उसे आपस की एकता की दीवाल और 'पंच-परमेश्वर' की शक्ति से गाँव के बाहर ही रोक दें। और साथ-साथ ऐसा कुछ इंतजाम करें कि खलिहान से ही फसल बाजार न पहुंचानी पड़े। बाजार-भाव जब उचित मिले तभी उपज गाँव से बाहर जाय, सो भी गाँव की जरूरत से अधिक हो उतनी ही, ताकि गाँव में कोई भूखा न रहे। जिस गाँव में गाँव का कोई आदमी भूखा सोता है, उस गाँव में 'लक्ष्मी' कभी आ ही नहीं सकती।" हरिहर ने कहा।

"बात तो बहुत अच्छी कही काका ने, लेकिन यह होगा कैसे ?" सवाल सबके सामने था।

"करने से होगा, और कैसे होगा ? कोई जादूगर जादू की छड़ी घुमाकर नहीं कर जायगा। उसकी शुरूआत के लिए ग्रामदान करना होगा।" हरिहर ने कहा।

"ग्रामदान ?" सब एक साथ चौंक पड़े !

"हाँ, ग्रामदान, यही एक ऐसा 'साधन' है जिससे खजूर पर अटके 'स्वराज्य' के फल को धरती पर लाया जा सकता है !" हरिहर ने कहा !

"लेकिन ग्रामदान है क्या चीज ?"

(क्रमशः)

www.vinoba.in

नयी लोकशक्ति का विकास

पिछले दिनों मुंगेर जिले के सोनो प्रखण्ड में प्रखण्डदान के सिलसिले में घूम रहा था। इस क्षेत्र के भूतपूर्व विधान-सभा के प्रतिनिधि एवं मंत्री श्री श्रीकृष्ण सिंह भी साथ थे। लोगों ने अपनी स्थिति बतायी कि पानी पड़ नहीं रहा है, धान के मर जाने का खतरा सिर पर मंडरा रहा है, ग्रामीण लोग बहुत चिन्तित हैं। साथ ही उनलोगों ने यह जानकारी दी कि गाँव के एक अच्छे 'आहर' की मरम्मत व्यक्तिगत ठीकेदारी के कारण पूरी नहीं हुई। वह आहर यदि बन जाय तो गाँव की जमीन के एक बड़े हिस्से की सिंचाई हो जायगी।

श्री श्रीकृष्णबाबू ने उन लोगों से जानना चाहा कि क्या गाँव के लोग खुद मरम्मत का जिम्मा लेना चाहते हैं? गाँववाले चुप होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। आहर की मरम्मत का ठीका बी० डी० ओ० के कार्यालय से दिया जाता है। काम किये जाने के समय से लेकर काम पूरा किये जाने तक तथा बिल की अन्तिम निकासी में उस काम से सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी को डेग-डेग पर किस तरह सलाम करना पड़ता है एवं घूस के बिना गाड़ी एक डेग भी आगे नहीं बढ़ती, यह बात गाँव वालों को पग-पग पर चुभती है। उस अनुभव के कारण वे अपने ही लाभ के आहर की मरम्मत का ठीका लेने की हिम्मत नहीं किये।

यह देखकर श्रीबाबू ने उनसे कहा: "यह फर्क है ग्रामदानी गाँव में और दूसरे गाँव में। गतवर्ष सूखे के समय जब बिहार सरकार पीने के पानी का कुआँ बहुत उदारता के साथ बनवा रही थी, तब उसके साधन जमुई क्षेत्र के सभी प्रखण्डों को समान रूप से मिल सकते थे, क्योंकि वह अकाल-क्षेत्र घोषित था। उस समय मेरी बहुत इच्छा थी कि झाझा, सोनो और चकाई प्रखण्डों के सभी आदिवासियों के गाँवों में पीने के पानी के कुएँ बन जाँय। इन वनवासियों को गढ़े और नाले का पानी पीना पड़ता है। उसके कारण उनके स्वास्थ्य पर बहुत खराब प्रभाव पड़ता है। जब से मैं चुनाव में जीतकर पटना गया तब से बराबर यह कोशिश करता रहा कि आदिवासी क्षेत्रों में बनाये जाने वाले कुओं के लिए अधिक खर्च मिले, ताकि अधिक-से-अधिक कुएँ खुदवाये-बँधवाये जा सकें। पिछले सूखे के समय काफी सहूलियतें दी भी गयीं। लेकिन मैं अब देखता हूँ कि इस अवसर का लाभ उन गाँवों ने खूब उठाया जिनका ग्रामदान हुआ था और उनको ग्रामसभा बन चुकी थी।

"झाझा प्रखण्ड में, जो इस समय प्रखण्डदान में आ चुका है, पिछले सूखे के समय ऐसे ५३ गाँवों में कुएँ बनवाये गये, जिनमें ग्रामसभाएँ बनी है। ये गाँव इतने गरीब हैं कि अपनी औकात से वे कभी कुएँ बनवा नहीं सकते थे। यह फर्क मेरी समझ से ग्रामदान से संगठित लोकशक्ति के कारण हुआ। एक फर्क मैं और देखता हूँ। अपने दल या और दूसरे राजनैतिक दलों में जो लोग हैं, वे कम-बेस सफेदपोश लोग हैं। पर झाझा प्रखण्ड में जब ग्रामदानी ग्रामीणों की प्रखण्डस्तरीय बैठक होती है, तब तो उसमें ऐसे लोगों को उत्साह से भाग लेते देखता हूँ जो गाँव के रहने वाले साधारण लोग हैं। और जो अब तक सभा-सोसाइटियों में कोरे तमाशबीन रहते थे। अब वे एक साथ बैठकर निर्णय लिया करते हैं, इसलिए उनका आत्म-विश्वास भी बढ़ रहा है।"

—हेमनाथ सिंह

सबलोग इस काम में जुट जायँ

समाजवादी कहते हैं कि विनोबा जमीन के मामले को हल करने का काम कर रहे हैं, यानी हमारा ही कार्य कर रहे हैं। मैं कहता हूँ, सच है। इसलिए आप मेरे काम में जुट जाइए। जनसंघ वाले कहते हैं कि विनोबा हमारी सभ्यता के अनुसार कार्य कर रहा है। मैं कहता हूँ कि सच है, इसलिए आप भी मेरे काम में जुट जाइए। कांग्रेसवाले कहते हैं विनोबा हमारा ही काम कर रहा है। मैं कहता हूँ सच है, इसलिए मेरे काम में जुट जाइए। सर्वोदयवाले कहते हैं कि विनोबा गांधी-तत्त्वज्ञान के अनुसार काम करते हैं। मैं कहता हूँ सच है, इसलिए आप भी इस काम में जुट जाइए।

इस काम में बहुत सारे जुट जाते हैं, तो हम कंधे-से-कंधा लगाकर यह काम कर सकते हैं। इससे हमारे दूसरे मसले भी हल हो जायँगे। हम देश में एकता कायम करेंगे।

—विनोबा

फसल-चक्र

एक खेत में एक ही फसल लगातार नहीं बोनी चाहिये। फसलों को हेर-फेर करके बोना चाहिए। इससे भूमि की उत्पादक शक्ति नहीं घटती। इसे फसल-चक्र कहते हैं।

जैसे—यदि एक खेत में पहले साल गेहूँ, दूसरे साल अरहर और तीसरे साल गन्ना बोया जाय तो वह तीन वर्ष का फसल-चक्र होगा। इसके कई लाभ होते हैं। जैसे—

१—मिट्टी की ताकत नहीं घटती

(अ) भिन्न-भिन्न फसलों की जड़ें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ उथली जड़वाली तो कुछ गहरी जड़ वाली होती हैं। गहरी जड़वाली फसलें मिट्टी की गहराई और उथली जड़वाली मिट्टी के ऊपरी भाग से अपना अधिकांश भोजन प्राप्त करती हैं। यदि गहरी जड़ों वाली फसलें ही बराबर एक खेत में बोयी जायेंगी तो वे मिट्टी की एक विशेष तह से अपना भोजन लेंगी, और खेत को बहुत कमजोर बना देंगी। इस तरह कुछ दिनों में वह खेत फसल के लिए बेकार हो जायेगा। अतः यदि उथली और गहरी जड़वाली फसलें हेर-फेर से बोई जायँ तो मिट्टी की भिन्न-भिन्न तहों को शक्ति बटोरने का मौका मिलता रहेगा। इसलिए उथली जड़वाली फसल, जैसे—गेहूँ, के बाद गहरी जड़वाली फसल, जैसे—कपास, बोते हैं।

(ब) भिन्न-भिन्न फसलों को भोजन के भिन्न-भिन्न तत्त्वों की खास तौर से आवश्यकता पड़ती है। कुछ फसलें किसी एक तत्त्व को अधिक लेती हैं और कुछ दूसरे तत्व को। एक एकड़ खेत से गेहूँ और तम्बाकू की फसलें क्रमशः लगभग २५ से ५० किलोग्राम नाइट्रोजन, ८ से १० किलोग्राम फासफोरिक एसिड और १४ से १५ किलोग्राम पोटाश लेती हैं। यदि एक ही फसल लगातार एक ही खेत में उगायी जाय तो मिट्टी में अवश्य किसी विशेष तत्त्व की कमी हो जायेगी।

२—फसलों का रोग व कीड़ों के आक्रमण से बचाव

यदि एक ही फसल या एक ही कुटुम्ब की फसलें बिना हेर-फेर किये लगातार प्रति वर्ष उसी खेत में बोयी जायँ तो उस फसल के कीड़े एवं रोग बराबर पनपते रहेंगे, जिससे उपज में भारी कमी आ जायेगी। कौन-सी फसल किस कुटुम्ब की है उसकी तालिका नीचे दी गयी है। प्रति वर्ष एक खेत में एक कुटुम्ब की फसल कदापि नहीं बोनी चाहिए।

१ : लौकी कुटुम्ब—लौकी, कुम्हड़ा, पेठा या भतुआ, तरबूज, चिचिड़ा, खीरा आदि।

२ : टमाटर कुटुम्ब—टमाटर, बैगन, आलू, मिर्चा, तम्बाकू, रसभरी आदि।

३ : गाजर कुटुम्ब—गाजर, धनियाँ आदि।

४ : कपास कुटुम्ब—कपास, भिण्डी आदि।

५ : मटर कुटुम्ब—मटर, चना, अरहर, मूँग, उर्द, मूँगफली, खेसारी, मसूर, सेम, सोयाबीन आदि। सब दलहन।

६ : सरसों कुटुम्ब—सरसों, पातगोभी, फूलगोभी, गांठगोभी, शलजम, मूली, राई आदि।

७ : पालक कुटुम्ब—पालक, चुकन्दर आदि।

८ : प्याज कुटुम्ब—प्याज, लहसुन, बनप्याज आदि।

९ : घास कुटुम्ब—मक्का, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, साँवा, टांगुन, कोदो, गन्ना, धान, काँस, बाँस आदि।

एक ही कुटुम्ब की फसल लगातार लगाने पर उस कुटुम्ब की घासें भी वहाँ अधिक उगती हैं।

३—घास का कम उगना

कुछ फसलों के साथ घासें भी उग आती हैं। जैसे—बंदगोभी, तम्बाकू या गाजर के साथ टोकरा या ठोकर। किन्तु फसलों की फेरफार से ये नहीं उगतीं।

४—दालवाली फसलों के बाद दूसरी फसलों को लाभ

जब घड़ियाल के दांत में मांस अटक जाता है तो वह किसी स्थान पर अपना मुँह खोलकर चुपचाप बैठ जाता है, नदी के किनारे। कोई कौआ उसके मुँह में घुस कर उसके दाँत का माँस खोद-खोद कर खाता है। इस प्रकार कौवे का पेट भर जाता है, और घड़ियाल का दाँत साफ हो जाता है। प्रकृति में यह क्रिया बहुत होती है। प्रत्येक दाल वाली फसल की जड़ पर आपको गाँठें मिलेंगी। वे गाँठें एक प्रकार के जीवाणुओं के कारण होती हैं। जीवाणु उनकी जड़ पर रहते हैं। वे पौधे को कोई हानि नहीं पहुँचाते। बल्कि अपने रहने के एवज में वातावरण से प्रति एकड़ १६ से ३८ किलोग्राम तक नाइट्रोजन दालवाली फसल के साथ जुटाते हैं। भूमि जितनी ही कम उपजाऊ होती है, नाइट्रोजन उतना ही अधिक इकट्ठा होता है। यह नाइट्रोजन दूसरी फसलों के काम आता है। मूँग के बाद गेहूँ बोने से उसको इस प्रकार का सहज लाभ मिलता है।

५—दूसरी फसल के लिए खेत की तैयारी में सहायता

कुछ फसलों की खुदाई के बाद अगली फसलों के लिए खेत की तैयारी में मदद मिलती है। जैसे—आलू व मूँगफली खोद कर जब खेत खाली होता है तो खुदाई से अगली फसल के लिए खेत की तैयारी में आसानी हो जाती है।

६—लागत कम

अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलें, जैसे—गेहूँ के बाद कपास, अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहनेवाली; जसे—धान के बाद चना बोने से अच्छा रहता है। साथ ही खर्च भी कम पड़ता है।

७—जल्दी तैयार होनेवाली फसलों से लाभ

कुछ फसलों के तैयार होने में कम समय लगता है। जब कि अन्य फसलों के लिए उनसे अधिक समय चाहिये। जैसे—गेहूँ के बाद मूँग नं० १ और अन्य खरीफ की फसलें भी ले सकते हैं। इस प्रकार जायद में चना व चीना लेकर खरीफ में भी उसी खेत में कोई और फसल ली जा सकती है।

किन्तु फसल-चक्र तैयार करते समय प्रति तीन वर्ष बाद खेत को अवश्य एक बार परती छोड़ना चाहिए। नहीं तो उसकी भी वही दशा होगा जो औरत को प्रति वर्ष बच्चा जनने में होती है।

—*शैलेन्द्र कुमार निर्मल, पारो, भूटान*

विरोधाभास

बीरबल और अकबर बादशाह की कहानी प्रसिद्ध है। बादशाह ने हुक्म दिया कि जितने दामाद हैं, उन सबको फाँसी की सजा दी जाय। बीरबल ने बहुत-सी लोहे की सूलियाँ बनवायीं और एक चाँदी की और एक सोने की सूली भी बनवायीं। बादशाह ने पूछा : "क्यों, तैयारी हो गयी ?" बीरबल ने कहा, "तैयारी हो गया।" और उसने बादशाह को सूलियाँ दिखायीं। बादशाह ने पूछा, "एक चाँदी और एक सोने की क्यों बनवायीं ?" बीरबल ने धीरे से कहा : "चाँदी की मेरे लिए और सोने की आपके लिए, क्योंकि आप और मैं भी किसी के दामाद तो हैं ही !"

इसी तरह जो मालिकी का द्वेष करते हैं, वे खुद मिल्कियत चाहते हैं। उधर वे बड़ी-बड़ी मिल्कियत छोड़ने को तैयार नहीं और इधर ये छोटी-छोटी मिल्कियत छोड़ने को तैयार नहीं। परन्तु बड़े मालिकों से द्वेष जरूर करते हैं। लेकिन केवल मत्सर करने से शक्ति नहीं बनती।

—*विनोबा*

ग्रामस्वराज्य की ओर

खादी की इज्जत : परदे की प्रतिष्ठा

दरभंगा जिले के जमालपुर गाँव में आधे हिंदू हैं, आधे मुसलमान। दोनों प्रेम से रहते आये हैं। ग्रामसभा के अध्यक्ष दुखी चौधरी हैं और मंत्री अलीसजादखान। ग्रामदान-पुष्टि कार्य अध्यक्ष ने किया है, जब कि अन्य गाँवों में हमारे कार्यकर्तागण जाकर करते हैं। केदार बाबू के ग्राम पाली में सामूहिक श्रमदान से बाँध, सड़क, पोखर, स्कूल और मंदिर बनाये गये हैं। तुमौल गाँव में पचहत्तर प्रतिशत ग्रामीण खद्दरधारी हैं, अपने घर का कता खद्दर पहनते हैं, कोई मिलावट नहीं। सूत कातना उतना ही जरूरी मानते हैं, जितना धान उपजाना। छः तकुएवाले एक सौ अम्बर चरखे चल रहे हैं, जिसकी आमदनी से कुछ लड़के कॉलेज में पढ़ रहे हैं। खादीभंडार के लिए लोग भूमि राजी-खुशी से बिना कुछ लिए देते हैं। गरीब-से-गरीब आदमी ग्यारह आदमियों का भोज करता है तो खादी-कार्यकर्ता को जरूर खिलाता है। इतनी अधिक इज्जत है खादी की उस गाँव में!

× × × ×

कोसी-तट पर नीमा गाँव में हमने ग्रामसभा का गठन किया। अध्यक्ष बाबा कलित यादव के परिवार में एक सौ सदस्य हैं। इतना बड़ा परिवार हमने किसी जगह नहीं देखा था। बहुत खुशी हुई। पहले चूल्हा भी एक ही था, पर घर की औरतों ने पंद्रह चूल्हे कर दिये हैं। 'बाबा' ने शिकायत की। उनके पास १०० मवेशी हैं। जमीन रेतीली है, उपजाऊ नहीं है। घास काफी है। मजदूर मालिकों से अधिक सुखी हैं। ग्रामसभा की 'सेवक-समिति' में हर जाति का प्रतिनिधि मनोनीत किया गया है। एक मुसलमान और एक बहन को भी उसमें रखा गया है। तिस पर भी बहनें फूस के पीछे खड़ी कारवाई सुन रही थीं। 'औरत बिना पर्दा के, पान बिना जर्दा के बेकार' — यहाँ जो यह कहावत प्रचलित है इसे बदलने का समय अब आ गया है।

—*जगदीश शबनमी*

www.vinoba.in

पति-पत्नी के सम्बन्ध

प्रिय राधा,

तुमको मेरा पत्र मिला होगा। उसमें मैंने परिवार के वातावरण तथा सम्बन्धों के बारे में लिखा था। तुमको खुद भी अब इन बातों का अनुभव हो रहा होगा। तुम्हारे इस विषय में क्या विचार हैं, लिखना।

देखो, परिवार के वातावरण तथा सम्बन्धों का असर अपने निजी पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। विवाह के बाद लड़की और लड़के को एक नया सामाजिक पद मिलता है। इस पद के साथ-साथ उनके कामों में भी परिवर्तन हो जाता है। पद और काम के बदलने पर दोनों को जीवन की नयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। तब विवाह के समय की बहुत सारी भावनाएं क्षणिक मालूम होती हैं। अब विवाह जीवन की एक स्थायी चीज बन जाती है। मन की दुनिया की सैर समाप्त करके वास्तविक दुनिया में रहना होता है। जीवन के बहुत से सुख और दुःख, रोग और भोग के अनुभव होते हैं। इनको सहने और भोगने के लिए दोनों को तैयार होना पड़ता है।

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी दोनों को ही अपनी जिम्मेदारियों को निभाना जरूरी होता है। पति अपनी पत्नी से सामान्य देखभाल तथा सेवाओं की आशा करता है, और उसी प्रकार पत्नी पति से अपनी सुख-सुविधा पूरी होने की उम्मीद करती है। ये आशाएं और उम्मीदें पूरी होती रहें, तो पति-पत्नी अपनी अपनी जिम्मेदारी निभाने में सफल हैं नहीं तो असफल हैं, ऐसा माना जाता है।

राधा, दाम्पत्य जीवन सफल पारिवारिक जीवन की बुनियाद माना जाता है। लेकिन आज कितने लोगों का दाम्पत्य-जीवन सचमुच सुखी है? ऊपर से देखने में लगता है कि अमुक के सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं, लेकिन जब गहराई में जाकर देखो तो पता चलता है कि वास्तविकता क्या है। कभी-कभी सम्बन्ध शुरू में अच्छे होते हैं, बाद में बिगड़ जाते हैं, और कभी-कभी बिगड़कर भी बन जाते हैं। तुम कहोगी, ऐसा क्यों होता है? इसके एक नहीं अनेक कारण हैं। जैसे—रुपये-पैसे के मामले, भिन्न-भिन्न तरह के संस्कार और आदतें, मन की दुनिया, स्वास्थ्य और समाज का ढांचा आदि। भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहते हैं।

मेरे पड़ोस में जो माया रहती है, उसे तुम अच्छी तरह जानती हो। विवाह के बाद जब वह ससुराल आयी तो कुछ दिनों तक पति से और परिवार के लोगों से अच्छे सम्बन्ध रहे। सबके साथ वह बहुत अच्छी तरह घुल-मिल गयी। कुछ दिनों बाद परिवार से तो जैसा सम्बन्ध था बना रहा, लेकिन पति-पत्नी में आपस में तनाव रहने लगा। परिवार में पर्दे का रिवाज था, इसलिए दोनों में खुलकर कुछ नहीं होता था, पर अन्दर-अन्दर आपस में महीनों बोल-चाल नहीं होती थी। खाते-पीते उठते-बैठते हर समय झनक-पटक होती रहती थी। इस तरह कुछ दिन बीते। फिर जब पति की नौकरी लग गयी और वह पैसा कमाने लगा तो दोनों में खूब पटने लगी। जानती हो पहले तनाव क्यों रहता था? बात यह थी कि माया का पति नौकरी नहीं करता था। ट्रेनिंग कर रहा था। उसमें फेल हो गया तो घर रह कर खेती करने लगा। माया को यह पसन्द नहीं था। पति के इस तरह रहने से उसकी जरूरतें पूरी नहीं हो पाती थीं। अब वह पति के साथ कलकत्ता में रहती है।

तनाव का कारण केवल आर्थिक ही नहीं होता। पति-पत्नी के आपस के तनाव के अन्य कारण भी हैं। सुनयना को तुमने देखा है। वह देखने में कितनी सुखी दिखाई देती है। अच्छे-अच्छे गहने, कपड़े, रुपये, पैसे किसी चीज की कमी नहीं है। उसका पति वकील है, खूब पैसे कमाता है। दोनों पति-पत्नी छुट्टियों में घूमने भी जाते हैं। पति उसकी हर इच्छाओं को पूरी करते हैं, फिर भी वह संतुष्ट नहीं है। यों तो वह पति की खूब सेवा करती है। इतने नौकर-चाकर रहते हुए भी वह पति के पांव स्वयं दबाती है। इतनी पति-परायणा होते हुए भी पति से एक दूरी-सी बनी रहती है। जानती हो किसलिए? उसके घर बहुत से लोग आते-जाते हैं। उसके पति अपने काम में व्यस्त रहते हुए भी उन लोगों को समय देते हैं, किन्तु सुनयना से खुलकर हंसने-बोलने का समय वे नहीं निकाल पाते। सारा सुख-वैभव रहते हुए भी पति की यह उदासीनता उसके मन को कुरेदती रहती है। यह गुबार अच्छी तरह उस समय निकलता है जब वह बीमार होती है।

तुम कहोगी कि बात कुछ नहीं है, सुनयना बेकार परीशान रहती है। लेकिन जानती हो, मनुष्य मन का प्राणी है। केवल सुख के साधनों के मिल जाने से ही उसे सन्तोष नहीं होता। जब जैसी आवश्यकता हो, स्त्री को पुरुष

www.vinoba.in

से, और पुरुष को स्त्री से, स्नेह, सहानुभूति आदि मिलनी चाहिए। दोनों को एक दूसरे का हर तरह से ध्यान रखना चाहिए। इन बातों का ध्यान न रखने पर मन में एक तरह की अशान्ति-सी बनी रहती है। किसी भी अवस्था में सहानुभूति या स्नेह में कोई कमी होती है तो पति-पत्नी में आपसी तनाव बढ़ जाता है।

राधा, कभी-कभी पति-पत्नी के संस्कार में समाई हुई छोटी-मोटी बातें, आदतें, व्यवहार करने का ढंग भी भयंकर परिणाम लाते हैं। अब शान्ति की ही बात लो। जब वह पति के साथ रहती है तो उसके पति उसकी आदतों से बहुत परीशान रहते हैं। शान्ति जरा भी ध्यान नहीं देती है। जब उसके पति अपने मित्रों के साथ रहते हैं तो उसी बीच वह उनको डाँटने-फटकारने लगती है, और उनके दोषों की चर्चा करने लगती है। उस समय शान्ति के पति हँसकर टाल जाते हैं लेकिन बाद को ये ही बातें आपस में तनाव का कारण बन जाती हैं। इसी तरह जब वह पति के साथ चलती है तो आपस की बातों में कभी-कभी इतना झल्ला कर बोलती है कि आस-पास के लोगों का ध्यान उन दोनों की तरफ खिंच जाता है। उसके पति सकुचाकर मन-ही-मन परीशान हो जाते हैं। पर शान्ति इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देती। उसकी यह लापरवाही दोनों को परीशान करती है। इससे तंग आकर शान्ति के पति ने शान्ति को साथ लेकर कहीं आना-जाना छोड़ दिया है। शान्ति इन बातों को धीरे-धीरे महसूस करने लगी है, दुःखी भी रहती है, लेकिन इस आदत को छोड़ नहीं पाती।

ये सब बातें ऐसी हैं जिनको तुम भी जानती हो। केवल ध्यान देने की जरूरत है। यदि इन बातों पर ध्यान दोगी तो ऐसी भूलें तुमसे नहीं होंगी। तुम कहोगी कि बच्चों के पालन-पोषण की बात करते-करते मैं कहाँ जा पहुँची। लेकिन पति-पत्नी के आपस के सम्बन्धों का प्रभाव उनकी सन्तान के जीवन की बुनियाद पर ही पड़ता है, इससिए इतनी बातों का जिक्र करना जरूरी लगा। और बातें अगले पत्र में लिखूंगी।

तुम प्रसन्न होगी।

सस्नेह तुम्हारी,
बहन

मिट्टी का बना हुआ सुवर्ण-पात्र

एक दफा एक बड़े नेता ने हमसे पूछा कि 'आप गाँव-गाँव घूमते हैं और सब देखते हैं तो यह बताइये कि हम जो योजनाएँ करते हैं उसमें लोगों का सहयोग, उत्साह क्यों नहीं मिलता है ?'

मैंने जबाब दिया कि इसका एक ही कारण है कि लोग बैल नहीं हैं। कभी किसी किसान ने अपने बैल से पूछा है कि 'अरे बैल भैया, अभी मौसम अच्छा है, बारिश अच्छी हुई है, तो खेत में क्या बोया जाय ?'

किसान कभी बैल की सलाह लेता नहीं है लेकिन बैल का सहयोग अपेक्षित है। किसान सब तय करता है। और बैल भी यह नहीं चाहता है कि उसकी सलाह ली जाय। वह चाहता है कि उसे पूरा खिलाया जाय। आज तो बैल की सलाह भी नहीं ली जाती है और उसे पूरा खिलाया भी नहीं जाता हैं। इसलिए सहयोग नहीं मिलता।

हिन्दुस्तान के लोग बैल नहीं हैं। उनकी अपनी योजना हो, गाँव-गाँव की योजना हो, तो उनमें उत्साह आयेगा। योजना सरकार की नहीं, गाँव-गाँव की हो। हर गाँव सर्वोदय-रिपब्लिक बनें और जैसे 'सोवियत संघ' बना है वैसे भारत आजाद गाँवों का संघ बने।

आजाद गाँवों का बना हुआ आजाद देश हो। आज तो गुलाम गाँवों का बना हुआ आजाद देश है। यानी मिट्टी का बना हुआ सुवर्णपात्र ! यह कैसे हो सकता है ? अगर मिट्टी का बना हुआ है तो सुवर्णपात्र कैसे ? और सुवर्णपात्र है तो मिट्टी का बना हुआ कैसे ? इसका मतलब यह यह है कि नाम की आजादी है।

—विनोबा

www.vinoba.in

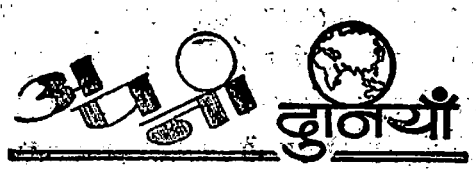

काला दिल : गोरा दिल
और
विज्ञानयुग की क्रूरता के कारनामे

पिछले साल ३ दिसम्बर को जब दक्षिण अफ्रीका से खबर आयी कि एक डाक्टर ने एक मरते हुए रोगी को एक नया दिल दे दिया तो लगा कि जो कभी नहीं हो सका था वह हो गया। अब वह दिन दूर नहीं है जब मनुष्य दिल के दर्द से या दिल के टूटने से भले ही परीशान होता रहे, लेकिन दिल के फेल हो जाने के भय से मुक्त हो जायगा। वास्तव में यह सफलता विज्ञान का अद्भुत चमत्कार थी, और उसके आधार पर पिछले एक साल में कई देशों में सफल प्रयोग हुए हैं।

लेकिन यह चमत्कार हुआ द० अफ्रीका में। द० अफ्रीका चमत्कारों का ही देश है! वहाँ के अस्पतालों की 'गोरी' ऐम्बुलेंस गाड़ियाँ काले रोगियों को नहीं ढो सकतीं। अक्तूबर '६७ से फरवरी '६८ तक १२ हजार गैलन दूध रोज पनालों में बहा दिया गया, क्योंकि दूध इतना हो गया था कि कोई पीनेवाला नहीं था, लेकिन अस्पतालों में पड़े काले रोगियों को नहीं दिया गया!

द० अफ्रीका में अगर एक ही चमत्कार होता तो कोई बात भी थी, लेकिन वह तो चमत्कारों का ही देश है—फासिस्टवादी चमत्कारों का। अफ्रीका में ही सोचा जा सकता है कि चीड़-फाड़ के लिए वहाँ से यूरोप लाशों को भेजने का भी व्यवसाय किया जा सकता है! यह सब काले लोगों से अलग-थलग रहने की गोरों की नीति का ही चमत्कार है। और, लाशें ढूँढ़नी भी कहाँ है? कोई भी गोरा पुलिसमैन जब चाहे चार-छ 'लाशों' को मार गिरा सकता है।

ये दिल किसके हैं जो गोरे रोगियों को दिये जा रहे हैं? क्या ये मरे हुए लोगों के दिल हैं, या मरते हुए लोगों के? चिकित्सा-विज्ञान का कहना है कि खून का दौरा बन्द होने के केवल तीन-चार मिनट के अन्दर मनुष्य का हृदय बेकार हो जाता है। लेकिन द० अफ्रीका के डा० बर्नाड और उनके साथी-डाक्टरों का यह दावा है कि उन्होंने इस समस्या का हल निकाल लिया है। वह हल क्या है? मरने के पहले ही हृदय को शरीर से निकाल लेने की कोई वैज्ञानिक पद्धति?

दो 'दिल-दाताओं' में से एक श्रीमती एवलिन जेकब्स थी। एक दिन वह अचानक बेहोश हो गयी, और बेहोशी की हालत में अस्पताल पहुँचायी गयी। दो दिन तक सम्बन्धियों ने मुलाकात की कोशिश की, लेकिन नहीं हो सकी। और जब खबर मिली तो यह कहने के लिए कि आकर लाश ले जाओ। लाश में दिल नहीं था। निकाला जा चुका था। पूछने पर अधिकारियों ने बताया कि रोगी का पता-ठिकाना नहीं मालूम था, इसलिए उसकी लाश पर अस्पताल का अधिकार था। दिल पर ही क्यों, गोरे को काले की आत्मा पर भी अधिकार है!

हिटलर के फासिस्ट डाक्टरों ने यहूदी रोगियों और बंदियों पर प्रयोग किये थे। अब गोरे डाक्टर कालों पर प्रयोग कर रहे हैं। दुनिया द० अफ्रीका के हृदय-विशेषज्ञ डा० बर्नार्ड के लिए 'वाह-वाह' कर रही है लेकिन क्या किसी को इतनी भी फुर्सत है कि उनसे इतना तो पूछ ले कि उनका चाकू किसका दिल निकालने के लिए तेज किया जा रहा है—गोरे का या काले का? जीवित कालों के दिल से मरते हुए गोरे बचाये जायँ, यह विज्ञान भयंकर फासिस्टवादी है, और सभ्य दुनिया को कहना चाहिए कि यह विज्ञान हमें स्वीकार नहीं है।

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे।
श्रीकृष्णदत्तभट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए इंडियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।